अंक : १२७

जुलाई-सितंबर २०१४

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

कमल कपूर

ताराचंद्र मकसाने

रिया शर्मा

निरूपम

धर्मेंद्र कुसुम

आमने-सामने

सविता बजाज

सागर-सीपी

डॉ. चंद्र प्रकाश द्विवेदी

१५ रुपये

जुलाई-सितंबर २०१४
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
अशोक वशिष्ठ
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@yahoo.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
Naresh Mittal
(M) 845-304-2414
Namit Saksena
(M) 347-514-4222
● **शिकागो संपर्क** ●
Tulika Saksena
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कहानियां

न भूतो न भविष्यति - **कमल कपूर** ९
थैंक्यू वेरी मच - **ताराचंद्र मकसाने** १७
सर्पदंश - **रिया शर्मा** २३
अतृप्त मोक्ष - **निरुपम** २९
धोखा - **धर्मेंद्र कुसुम** ३७

लघुकथाएं

डर / **कमलेश भारतीय** २१
आइना / **कमलेश भारतीय** २२
मां केवल मां होती है / **लक्ष्मी रूपल** २७
गांव का एक दिन / **डॉ. अशोक भाटिया** ४०
वह, जन्म / **डॉ. अशोक भाटिया** ४४

ग़ज़लें / कविताएं

दो ग़ज़लें / **देवी नागरानी** १५
दो ग़ज़लें / **राम कुमार पटेल "यार"** २२
इंच, इंच माप मिला है / **मधु प्रसाद** २८
ग़ज़ल / **नरहरि "अमरोहवी"** ३५
ग़ज़ल / **सच्चिदानंद "इंसान"** ४५

स्तंभ

"कुछ कही, कुछ अनकही" २
लेटर बॉक्स ४
"आमने-सामने" / **सविता बजाज** ४१
"सागर-सीपी" / **डॉ. चंद्र प्रकाश द्विवेदी** ४५
पुस्तक-समीक्षा ४९

●"कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : डॉ. अरविंद
एक झील पर बना पुल, नैपरविल, शिकागो (अमेरिका)

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

"कथाबिंब" का *"कहानी-विशेषांक"* (संयुक्तांक : १२५ व १२६) मई २०१४ मध्य तक वेबसाइट पर उपलब्ध हो गया था. विशेषांक के लोकार्पण का कार्यक्रम २४ मई को चेंबूर, मुंबई में आयोजित किया गया. इसमें बड़ी संख्या में साहित्य अनुरागियों ने भाग लिया. मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. रामजी तिवारी कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे. कार्यक्रम में डॉ. सूर्यबाला तथा सुश्री सविता बजाज जी का हमें विशेष सान्निध्य प्राप्त हुआ. इस अवसर पर श्री प्रेम जनमेजय, श्री लाल, स्व. दुष्यंत जी की पत्नी श्रीमती राजेश्वरी त्यागी व पुत्र आलोक त्यागी, स्व. कमलेश्वर जी की पत्नी श्रीमती गायत्री व उनकी पुत्री ममता, हस्तीमल "हस्ती," अरविंद "राही," श्री अनंत श्रीमाली आदि अन्य अनेक साहित्यकार व गणमान्य लोग उपस्थित थे. कार्यक्रम की विस्तृत रिपोर्ट पृष्ठ ५६ पर दी गयी है. विशेषांक प्रकाशन के कुछ दिनों के पश्चात ही एक अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी में शोध-पत्र पढ़ने हेतु मैं १२ जून को अमेरिका यात्रा पर निकल पड़ा. भाई डॉ. रूप सिंह चंदेल जी की मुझ पर विशेष कृपा है. अमेरिका निवासी कई लेखक, लेखिकाओं को मेरे वहां होने की सूचना चंदेल जी ने दे दी थी. प्रवास के दौरान सुश्री पुष्पा सक्सेना, सुश्री अनिल प्रभा कुमार व सुश्री इला प्रसाद से निरंतर संपर्क बना रहा. विशेषांक की कहानी पर सभी को फ़ोन व ई-मेल द्वारा अनेक प्रतिक्रियाएं मिल रही थीं. यह मेरी जानकारी में है कि *"कथाबिंब"* का एक विस्तृत पाठक वर्ग है. लेकिन मेरे लिए भी सुखद आश्चर्य था कि पत्रिका के हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर के एक पाठक ने २५ रुपये के अंतर्राष्ट्रीय पत्र के माध्यम से तीनों लेखिकाओं को अपनी प्रतिक्रिया अमेरिका भेजी. भारत से इस तरह का प्रतिक्रियात्मक पत्र, पहली बार, सबको *"कथाबिंब"* में कहानी छपने के उपरांत ही मिला था. २२ जून को मेरी भारत वापसी हुई.

इस अंक से *"कथाबिंब"* को वेबसाइट के अलावा फ़ेसबुक पर भी देखा जा सकता है. आवरण पर नामित लेखकों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को *"टैग"* करें. इससे इनकी रचनाओं की *"पहुंच"* का दायरा और व्यापक होगा.

●

अब इस अंक की कहानियों का ट्रेलर -- पहली कहानी *"न भूतो न भविष्यति"* जानी-मानी लेखिका कमल कपूर की रचना है. आज बूढ़े मां-बाप के लिए किसी के पास समय नहीं है. नौकरीपेशा नायिका घुटने की तकलीफ़ के कारण सीढ़ियां चढ़ कर ऊपर नहीं जा सकती जहां उसके माता-पिता रहते हैं. दोनों के चिड़चिड़े स्वभाव के कारण मां-बाप के पास कोई नौकरानी नहीं टिक पाती. ऐसे में, कहीं से गुलाबदेई प्रगट होती है और सारी स्थितियां बदल जाती हैं. अगली कहानी *"थैंक्यू वेरी मच "* (ताराचंद मकसाने) में बैंक के जनरल मैनेज़र के पद से सेवा-निवृत्ति के बाद रवि कुमार पूरी तरह अकेले हो जाते हैं. पूरा दिन बिताना उनके लिए मुश्किल है. अपने पहनावे की ओर से भी उनका ध्यान उचट जाता है. ऐसे ही एक दिन उनको एक पुराना सहयोगी मिलता है. उसके आग्रह पर, एक सार्थक पहल के रूप में वे "आशा ट्रस्ट" के बच्चों को पढ़ाने लगते हैं. "कथाबिंब" के पाठकों के लिए *"सर्पदंश"* की लेखिका रिया शर्मा का नाम नया है. कहानी की नायिका डिग्रीधारी है किंतु पति उसे नौकरी नहीं करने देता. अधिकांश भारतीय महिलाएं इस जाल से निकल नहीं पातीं. कहीं कोई समाधान नहीं है. विवशता वश घर-परिवार की सेवा में उनकी प्रतिभा जाया होती रहती है, यह "दंश" ता-ज़िंदगी चुभता रहता है. *"अतृप्त मोक्ष"* के लेखक निरुपम हमें परामनोविज्ञान की दुनिया में ले जाते हैं. मानव की जीवन यात्रा में अनेक भटकाव आते हैं, कई इच्छाएं पूरी नहीं होतीं. मोक्ष पाने की इस कोशिश में कभी रोशनी भी दिखाई देती है, किंतु क्या वास्तव में! अंक की पांचवीं और अंतिम कहानी है *"धोखा"* (धर्मेंद्र कुसुम). हममें से बहुतों ने बचपन में जादूगर और जम्हूरे का तमाशा अवश्य देखा होगा. हर गांव, कस्बे में तमाशा दिखाने वाले आपको मिल जायेंगे. भीड़ जुटाने के लिए डमरू बजाकर सांप-नेवले का "खेला" दिखाने का वायदा. कमोबेश यही हाल राजनीतिज्ञों का है. चुनाव के समय भीड़ जुटाकर किये गये वायदे कभी पूरे नहीं होते और यह सिलसिला चुनाव दर चुनाव चलता रहता है.

●

कहानी विशेषांक के प्रेस में जाने तक लोकसभा चुनावों के परिणाम नहीं आये थे. परंतु यह लगभग निश्चित लग रहा था कि राजग को बहुमत मिलेगा. लेकिन किसी ने, यहां तक कि भाजपा ने भी, यह नहीं सोचा था कि यह आंकड़ा ३०० को पार कर जायेगा. स्थिति यह है कि अकेले भाजपा को २८२ सीटें मिलीं और सरकार बनाने के लिए उसे किसी अन्य दल की "मदद" की आवश्यकता नहीं है. १२७ साल पुरानी कॉन्ग्रेस मात्र ४४ सीटों पर सिमट कर रह गयी. तीन-चार को छोड़कर अनेक पार्टियां दस की संख्या नहीं पार कर पायीं. ऐसा क्यों हुआ अब तक इसका यथोचित विश्लेषण सामने नहीं आया है. मोदी की आंधी थी, लहर थी, या सुनामी थी ? यदि ऐसा कुछ था तो हाल में कई प्रांतों में संपन्न उप-

चुनावों में भाजपा को अपेक्षित सफलता क्यों नहीं मिली? क्या मोदी का जादू ख़तम हो गया? सामान्यतया भारतीय जनमानस यथास्थिति को "ऊपर वाले की इच्छा" स्वीकार कर अधिक कुछ नहीं करना चाहता. सालों-साल यह मान कर कि कुछ नहीं हो सकता सब एक ढर्रे पर चलता रहता है. किंतु इस बार के लोकसभा चुनाव में एक परिवर्तन लाकर देश की सत्ता बदलने के लिए, समाज के सभी वर्गों के लोगों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया. मोदी की छवि एक विकास पुरुष के रूप में सामने आयी. लोगों को अधिक से अधिक वोट देने के लिए प्रेरित किया गया. हर क्षेत्र में १०-१२ प्रतिशत वोट अधिक पड़े. यह अतिरिक्त वोट युवाओं का था. यही कारण है कि पूर्व के सभी जातीय, पिछड़ा-अगड़ा, मजहबी, प्रांतीय समीकरण सब पीछे छूट गये. कॉन्ग्रेस को अपदस्त करने के लिए भारी संख्या में मताधिकार का प्रयोग किया. विश्व के अनेक देशों में आज मार-काट मची हुई है. लेकिन हमारे देश में बिना कोई ख़ून बहाये इतना बड़ा परिवर्तन हो गया यह साधारण बात नहीं है. विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की यह अंतर्निहित ताक़त है. दूसरे देशों के लिए यह एक उदाहरण है.

उप-चुनावों में स्थानीय मुद्दे ही प्रमुख होते हैं. परिणामों से केंद्र की सत्ता प्रभावित नहीं होती. उप-चुनावों में वोट का प्रतिशत एक बार फिर सामान्य जितना ही हो गया, यानी ४० प्रतिशत के आसपास. चारा घोटाले में सज़ा पाये लालू प्रसाद यादव और नीतीश कुमार जैसे धुर विरोधी गले मिलकर सत्ता-सुख के लिए कुछ भी कर सकते हैं. "आइडियोलॉज़ी" की बात करना व्यर्थ है.

तीस साल बाद आज केंद्र में पूर्ण बहुमत वाली सरकार है. चुनाव प्रचार में बहुत सारे वायदे किये गये थे. महंगाई और भ्रष्टाचार कम करना सरकार की पहली प्राथमिकता होनी चाहिए. माना कि सरकार के पास जादू की छड़ी नहीं है. एकदम से कुछ भी करना संभव नहीं है, फिर भी अपने जीवन-यापन में जनता को शीघ्र राहत मिलनी ही चाहिए. शायद इसके लिए कुछ और समय लगेगा. संभवत: खाद-पानी डालकर अभी ज़मीन तैयार की जा रही है. देशवासियों को मोदी सरकार से बहुत सारी उम्मीदें हैं. चार महीनों में कोई नया घोटाला सामने नहीं आया है. यह भारत का सौभाग्य है कि एक युगदृष्टा के रूप में हमें एक बहुत ही कर्मठ प्रधानमंत्री मिला है जो प्रति दिन १४-१५ घंटे काम करता है. अपने शपथ-ग्रहण समारोह में सभी सार्क देशों के प्रमुखों को निमंत्रित करके नरेंद्र मोदी ने एक अच्छी पहल की है. श्री लंका, बंग्ला देश, भूटान, नेपाल आदि पड़ोसी देशों से हमारे संबंध बेहतर हुए हैं. जापान और चीन ने भी अनेक क्षेत्रों में सहयोग का आश्वासन दिया है. यहां उद्देश्य मोदी सरकार की उपलब्धियां गिनाना नहीं है, बल्कि यह रेखांकित करना है कि किस तरह वर्तमान सरकार अब तक की सरकारों से भिन्न है. अल्प काल में ही इतने निर्णय लिये गये हैं जिनके दीर्घकालिक प्रभाव जल्दी ही नज़र आयेंगे. ब्रिक्स देशों के सम्मेलन में एक दूसरे की मदद के लिए एक साझा बैंक स्थापित किया गया. भारत को बैंक का अध्यक्ष चुना गया. प्रधानमंत्री ने सार्क देशों के लिए धरती की कक्षा में एक भारतीय उपग्रह छोड़ने का सुझाव दिया है. वैज्ञानिकों को प्रोत्साहित करने के लिए मंगल यान के मंगल की कक्षा में प्रविष्टि के समय इसरो में नरेंद्र मोदी सुबह-सुबह उपस्थित थे. सरकार ने जन-धन योजना लागू की. एक ही दिन में ग़रीबी रेखा के नीचे के करोड़ों लोग बैंक के खाताधारी बन गये. माना जा रहा है कि इस सुविधा के चलते अब किसी भी ज़रूरत के लिए साहूकारों से पठानी ब्याज दर पर ऋण लेने की आवश्यकता नहीं होगी. संभवत: किसानों की आत्महत्या की संख्या पर भी इसका प्रभाव पड़ेगा.

१५ अगस्त, स्वतंत्रता दिवस पर, उपस्थित जनसमुदाय को बीच में बिना किसी अवरोध के मोदी ने संबोधित किया. गांवों में संडासों की कमी पर चिंता व्यक्त की और सांसदों को आह्वान किया कि वे गांवों को एडॉप्ट करें. दूसरे दिन ही तीन-चार बड़ी कंपनियों ने १००-१०० करोड़ रुपये इस काम के लिए प्रस्तावित किये. ५ सितंबर, शिक्षक दिवस के दिन शिक्षा के महत्व को समझाने हेतु प्रधानमंत्री ने बच्चों को टीवी और रेडियो पर संबोधित किया. इन दिनों नरेंद्र मोदी अमेरिकी यात्रा पर हैं. २००५ में वीज़ा न मिल पाने के कारण वे अमेरिकी यात्रा नहीं कर पाये थे. भारत गणतंत्र के प्रधानमंत्री बन जाने के बाद वह सब पीछे छूट गया. आज भारतीय मीडिया के सारे लोग न्यूयॉर्क-वाशिंगटन में डेरा डाले हुए हैं. पहली बार किसी भारतीय प्रधानमंत्री ने संयुक्त राज्य संघ में हिंदी में भाषण दिया. न्यूयॉर्क के मेडिसन स्क्वायर गार्डन में भारतीय मूल के लोगों के सामने ९० मिनट तक नरेंद्र मोदी हिंदी में धाराप्रवाह बोलते रहे. १४ सितंबर हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने हिंदी को अपना कर हिंदी और भारत को गौरवान्वित किया है. साफ़-सफ़ाई भी मोदी जी को अत्यंत प्रिय है. २ अक्तूबर को स्वच्छ भारत अभियान चलाया जायेगा.

●

कोई भी अभियान तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसमें लोगों की भागीदारी न हो. अगर हम चाहते हैं कि देश का विकास हो तो हममें से हर किसी को अपनी भूमिका निभानी होगी. हर कुछ हम सरकार पर नहीं छोड़ सकते. आज हमारी जनसंख्या १२५ करोड़ हो गयी है. हमारे पास एक बड़ा वर्क फोर्स है. लेकिन जनसंख्या नियंत्रण भी एक राष्ट्रीय अभियान होना चाहिए, तभी योजनाएं कारगर हो पायेंगी.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ जनवरी-जून २०१४ के संयुक्तांक ने तो कमाल कर दिया है. पृष्ठ संख्या २१६ पर फैली-पसरी ३२ कहानियां, नौ लघुकथाएं, ग्यारह ग़ज़लें, कविताएं यानी ताश के पत्तों की तरह ५२ रचनाकारों की मेहनत को 'कथाबिंब' ने एक साथ परोस कर, वह भी मात्र बीस रुपये में एक अद्भुत सम्मान प्रदान किया है. इसके लिए 'आमने-सामने' व 'सागर-सीपी' चिरपरिचित स्तंभों की कुर्बानी भी दी गयी है. आपका 'कुछ कही, कुछ अनकही' भी अंक की तरह मारक है, क्यों नहीं अब तक के प्रकाशित संपादकीय की बातें एक पुस्तक के रूप में समेट लेते हैं. डॉ. रूपसिंह चंदेल भी सचमुच हार्दिक बधाई के पात्र हैं. विदेश के परिवेश में संबंधों की स्थितियां कैसी हैं इसकी झलक कई कहानियों में हमें मिलती है. विशेषांक इतना बेहतर और ज्ञानवर्धक बन पड़ा है कि यह जब ऐसे कथाकारों के हाथ लगा जिनकी कहानियां इसमें शामिल नहीं हैं तो उन्हें बहुत अफ़सोस भी हुआ होगा जैसे हमें हुआ. बाज़ार के गणित के बहाने जब प्राय: पत्रिकाएं अपने मूल्य राशि में वृद्धि कर रही हैं ऐसे समय में २० रुपये में अंक वह भी धांसू दे देना हमें ही नहीं और भी पाठकों को मुफ़्त का उपहार लगा होगा. एक नहीं सारी कहानियां नये तेवर, कलेवर और विषयों की वजह से रेखांकन योग्य हैं. सभी कथाकारों के श्रम और आपकी मेहनत को हार्दिक शुभकामनाएं.

- *राजेंद्र आहुति*

ए १३/६८, सेवई मंडी, भगतपुरी, प्रह्लाद घाट, वाराणसी-२२१००१ (उ. प्र.)

▸▸ 'कथाबिंब' जन-जून २०१४ मिला. प्रस्तुत अंक यह तथ्य उजागर करता है कि कहानी यात्रा पांचवें व सातवें दशक से निकल कर कहां से कहां पहुंची. 'कहानी', 'नई कहानी', 'सारिका', 'कथादेश' से यह बहुत आगे की कड़ी है. नये, वरिष्ठ सभी सम्मिलित रचनाकारों के साथ आपको हार्दिक साधुवाद. सभी कहानियां एक से एक लाजवाब. 'कथाबिंब' के सभी अंकों का महत्व है, यह अंक विशेष संग्रहणीय बना है. तहेदिल से बधाई.

- *आनंद दीवान*

२२, तिलक मार्ग, देहरादून-२४८००१.

▸▸ जनवरी-जून कहानी अंक मिला. डॉ. चंदेल और आपकी गहन मेहनत का कारनामा है कि एक से एक उत्तम कहानियां पढ़ने को मिलीं, लेकिन मुझे अफ़सोस रह गया कि मैं इस महायज्ञ में भाग न ले पायी. शायद पूर्व अंक नहीं मिला था फिर मेरे घर पर न होने के कारण वंचित रह गयी. समस्त लेखक एवं आप आयोजक बधाई के पात्र हैं.

- *दीपा*

डुगली, चंबा (हि. प्र.)

▸▸ 'कथाबिंब' का जनवरी-जून २०१४ अंक प्राप्त हुआ. आभारी हूं. साहित्य की स्तरीय पत्रिका पढ़कर प्रसन्न हूं. भारी-भरकम परिचय से युक्त लेखकों की कहानियां हैं. अंजान अपरिचित लेखकों से परहेज किया गया है.

डॉ. अरविंद ने एक शहर के यात्रा वृतांत को 'पच्चीसवें माले का फ़्लैट' कहानी बनाकर अभिनव प्रयोग किया है. इस प्रयोगशील स्तरीय रचना के लिए वे बधाई के पात्र हैं. अमरीक सिंह 'दीप' की कहानी 'उसका भोजन' शायद पहले भी पढ़ चुका हूं. भारी भरकम परिचय से युक्त कुछ लेखकों की रचनाएं सपाट बयानी हैं या अख़बार की रपट. उल्लेखनीय कहानियों में 'दो पाटन के बीच में' (कृष्ण बिहारी), 'उसका सच' (मंजुश्री), 'एक विधवा और एक चांद' (नीला प्रसाद), 'सुरली भौजी' (डॉ. रूपसिंह चंदेल), 'पंचमी के चांद की विजिट' (डॉ. सूर्यबाला) और अंत में सबसे ज़्यादा प्रभावित करनेवाली कहानी 'उत्तराधिकारी' (डॉ. स्वाति तिवारी).

– *राजा सिंह*

एम-१२८५, सेक्टर आई,,एल. डी. ए. कॉलोनी, कानपुर रोड, लखनऊ-२२६०१२

▸▸ 'कथाबिंब' का कहानी विशेषांक पाकर मन बांसों उछल पड़ा. भाई रूपसिंह चंदेल के परिश्रम की दाद देनी पड़ेगी. आपके द्वारा सौंपे गये दायित्व का निष्ठापूर्वक निर्वहन हेतु उन्हें मेरी बधाई. साथ ही आपकी पारखी नज़रों

की परख भी हुई कि विशेषांक के लिए आपने उन्हें पूर्ण आज़ादी के साथ रचनाओं के चयन का अधिकार दिया. सच पूछा जाये तो यह अंक विशेषांक न होकर उत्कृष्ट कहानियों/कविता-ग़ज़ल/लघुकथा के साथ एक अप्रतिम संकलन है जिसकी क़ीमत बाज़ार में ५०० रुपये के आस-पास होती. यानी आपकी पत्रिका के आजीवन सदस्यता शुल्क के बराबर. आप सोच सकते हैं पाठकवर्ग को मात्र २० रुपये में यह अंक उपलब्ध करा कर हम पर आपने कितना बड़ा कर्ज़ लाद दिया.

अंक अभी-अभी मिला ही है, रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया अगले पत्र में दे सकूंगा. वैसे, 'कथाबिंब' के कवर पृष्ठ हमेशा मन को मोहते रहे हैं. इस अंक के चित्रकार डॉ. शोभित बरतरिया को मेरी शुभकामनाएं एवं बधाई. 'लेटर-बॉक्स' स्तंभ के अंतर्गत श्री अरुण कुमार भट्ट को मैं सूचना देना चाहूंगा कि मेरे शहर के एक कवि मित्र श्री उमाशंकर राव 'उरेंदु' की एक छोटी-सी ग़ज़ल 'कथाबिंब' के कुछेक वर्ष पूर्व के किसी अंक में छपी थी. तबसे मित्र उरेंदु को 'कथाबिंब' के अंक नियमित रूप से मिल रहे हैं बिना सदस्यता के. मेरे मित्र भी भट्ट जी की तरह अपना ग्लानि भाव व्यक्त कर जाते हैं. यह एक छोटा-सा उदाहरण है अरविंदजी की दरियादिली का. अरविंदजी एवं मंजुश्री दोनों ही लेखक-पाठक के प्रति अति संवेदनशील हैं. तभी तो मैं इन्हें धर्मवीर भारती, श्रीपत राय, कमलेश्वर की श्रेणी का संपादक मानता हूं.

- *प्रशांत सिन्हा*

सागर-लहर, बंपास टाउन, पो. देवसंघ (देवघर), झारखंड-८१४११४.

▸▸ 'कथाबिंब' का कहानी विशेषांक अपने सुंदर आवरण पृष्ठ के साथ बहुत अच्छा लगा. अंक संग्रह करके रखने योग्य है. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में देश और समाज के वर्तमान का जो चित्र प्रस्तुत किया जाता है, वह पाठक को कभी-कभी यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि वह स्वयं कहां पर खड़ा है. जाने-माने रचनाकारों की कहानियों, लघुकथाओं और कविताओं, ग़ज़लों का चयन यह स्पष्ट दर्शाता है कि पत्रिका ३५ वर्ष की लंबी यात्रा सफलतापूर्वक पूरी करके अब प्रौढ़, परिपक्व तथा गंभीर हो गयी है. इस सकारात्मक एवं सार्थक प्रकाशन के लिए मैं, संपादक महोदय तथा संपादक मंडल को बधाई देती हूं. यह शुभकामना करती हूं कि 'कथाबिंब' भविष्य में भी अपना स्तर और गरिमा बनाये रखेगी. आपका यह भी सराहनीय प्रयास है कि रचना के साथ उसके रचनाकार का परिचय एवं पता रहता है. कई बार कोई रचना इतनी मर्मस्पर्शी होती है, मन को भीतर तक छू जाती है कि उसके रचनाकार को बधाई व सराहना के दो शब्द लिख कर भेजने की इच्छा होती है.

इस विशेषांक में डॉ. अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'दीवार के पार' लीक से हटकर बहुत कुछ कह जाती है. अभी तो समाज में न जाने ऐसी और कितनी दीवारें हैं जिनके पार झांकने की आवश्यकता है. लघुकथाओं में भी बड़े सटीक एवं पैने व्यंग्य हैं. कुल मिलाकर 'कथाबिंब' का कहानी विशेषांक साहित्य जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है.

- *लक्ष्मी रूपल,*

बी-३/२०१, निर्मल छाया टॉवर्स, वी. आई. पी. रोड, जीरकपुर (पंजाब) - १४०६०३.

▸▸ आपके द्वारा प्रेषित 'कथाबिंब' का कहानी विशेषांक प्राप्त हुआ. आभार. विशेषांक में एक से बढ़कर एक रचनाएं हैं. इतने अच्छे विशेषांक के लिए बधाई स्वीकारें.

'कथाबिंब' का इतिहास रहा है कि उसने कविता विशेषांक, कहानी विशेषांक ऐसे दिये हैं कि हिंदी साहित्य में धूम मचा दी है.

आपका यह 'तप', 'हद' से 'बेहद' होता जा रहा है. हिंदी साहित्य 'कथाबिंब' के योगदान को कभी भुला नहीं पायेगा. बहुत बहुत बधाई.

- *श्रीराम मीना*

गुरुधाम, बाबई रोड, महाराणा प्रताप नगर, होशंगाबाद (म. प्र.) ४६१००१.

▶▶ 'कथाबिंब' का कहानी विशेषांक अप्रत्याशित सा लगा. मुझे व्यक्तिगत रूप से ऐसा लगा जैसे इस कहानी विशेषांक के रूप में मुझे एक बड़ा सा पुरस्कार मिल गया हो. इस विशेषांक को संजोने और उसको इस आकर्षक कलेवर में प्रस्तुत करने में निश्चित ही आपने, डॉ. रूपसिंह चंदेल, मंजुश्री जी एवं 'कथाबिंब' की टीम ने काफ़ी परिश्रम किया है. मैं चूंकि प्रकाशन एवं पत्रकारिता कर्म से लंबे समय से जुड़ा हुआ हूं, इस कारण भली-भांति जानता हूं कि इस प्रकार के विशेषांक को निकालने में क्या कुछ नहीं करना पड़ता है. आपने इस विशेषांक की कार्य योजना के बारे में काफ़ी कह दिया है. कृपया इस सफल प्रयास के लिए बधाई स्वीकार करें. इसने पत्रिका से बहुत आशाएं जगा दी हैं.

वैसे तो इस विशेषांक की कई ख़ूबियां हैं, लेकिन इसके बहाने 'कथाबिंब' के पाठकों को आपकी, मंजुश्री जी और डॉ. चंदेल की कहानियों को पढ़ने का अवसर मिला, यह बड़ी बात है. अभी तक हम 'कुछ कही, कुछ अनकही', के माध्यम से ही आपके कृतित्व से परिचित हुआ करते थे, इस विशेषांक ने हमें कथाकार के रूप में आप से परिचित कराया. 'उसका सच' कहानी का तक़ाजा है कि नियमित रूप से न सही कभी कभार मंजुश्री जी के कथाकार से भी आप पाठकों को परिचित कराते रहें. लघुकथाओं की जमावट भी अच्छी रही. पुनः बधाई.

- युगेश शर्मा,
११, सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन,
सियाराम कॉलोनी, चूना भट्टी,
भोपाल-४६२०१६.

▶▶ 'कथाबिंब' संयुक्तांक १२५-१२६ प्राप्त हुआ. कथाबिंब का कहानी विशेषांक सुंदर बन पड़ा है. अथक परिश्रम व प्रयास के लिए अरविंद जी, रूपसिंह जी एवं मंजुश्री जी आप सभी को साधुवाद.

आपने इतना श्रम उठाकर पाठकों को नवीन व ताज़ा साहित्य उपलब्ध कराकर सराहनीय कार्य किया है. अल्का सिंह की कहानी 'धिनाधिन... धिन, धिनाधिन...' अति सुंदर बन पड़ी है. कोमल आदिवासी जीवन! बिल्कुल बेजुबान तितलियों की भांति मृत्युपूर्व के नृत्य कर रहे हैं. क्या ये स्वयं को बचाने का प्रयास है? अथवा मृत्यु का सौंदर्य? अनूठी कहानी है. 'मानसी इन वंडरलैंड', पुष्पा सक्सेना की कहानी प्रेरणादायक है. 'दो पाटन के बीच में' (कृष्ण बिहारी) समकालीन राजनीति के बिचौलियों की पोल खोलती है.

– डॉ. मंजुला देसाई
८/१० न्यू छाया बिल्डिंग,
गुरू नानक रोड, मुंबई-४०००५०

▶▶ सन १९७९ से प्रकाशित 'कथाबिंब' पत्रिका ने कुछ कीर्तिमान स्थापित किये हैं. अपने स्तंभों के द्वारा, कहानी प्रतियोगिता के द्वारा और विशेषांक निकालकर भी. दस जून को जनवरी-जून २०१४ का संयुक्तांक १२५-१२६ मिला था. उपयोगी, सार्थक और पठनीय. इसमें जितनी मेहनत डॉ. रूपसिंह चंदेल ने की है, उतनी ही साज-सज्जा और प्रस्तुति के साथ अरविंद भाई ने इसे पाठकों तक पहुंचाया है. निश्चय ही आज कथाकार से समय पर नयी कहानी पा लेना एक उपलब्धि है. व्यक्तिगत संपर्कों से ही यह संभव हो पाता है.

मुझे ख़ुशी है कि अनिल प्रभा कुमार, अमरीक सिंह 'दीप', अलका सिन्हा, कृष्ण बिहारी, बद्री सिंह भाटिया, बलराम अग्रवाल, मंजुश्री, तेजेंद्र शर्मा, दामोदर खड़से के साथ रूपसिंह चंदेल, विकेश निझावन, विजय, संतोष श्रीवास्तव, हरिसुमन बिष्ट, स्वाति तिवारी, सूर्यबाला, सुधा अरोड़ा और सूरज प्रकाश को भी पढ़ता आ रहा हूं. प्रस्तुत विशेषांक में इन सब सहयोगी रचनाकारों ने अपनी बेहतर कहानी भिजवाकर आपको और अतिथि संपादक को ही नहीं पत्रिका के पाठकों को भी सम्मानित किया है. पारिश्रमिक के लिए रचना देने वाले जहां बढ़ते जा रहे हैं, वहां अच्छी रचना के लिए सही मंच की तलाश में भी संतुलित दोस्त बेकरार रहते हैं. यह अच्छा है कि 'पच्चीसवें माले का फ़्लैट' से लेकर 'खोयी हुई ज़िंदगी' तक अनेक कहानियां समसामयिक विषयों और शिल्प के तेवर के साथ प्रस्तुत हुई हैं. सभी को बधाई. कविताएं, लघु-कथाएं, तो कथाबिंब की सहयात्री हैं ही. कहानी विशेषांक में आपने स्तर और संतुलन को क़ायम रखा है. यह आज के लेखन के लिए एक उपलब्धि है. कुछ छात्र जो कथा साहित्य पर शोध कार्य में लगे हैं, उन्हें आज की कहानी खोजने, पढ़ने में यहां दिक्कत नहीं होनी चाहिए.

'कथाबिंब' का आवरण चित्ताकर्षक लगा और इसमें अतिथि संपादक की भूमिका के साथ 'कुछ कही, कुछ

अनकही' भी मुझे उपयोगी लगी, कि समसामयिक विषयों को हिंदी संपादक स्पर्श करना नहीं भूलते. इस बार स्तंभों की कमी महसूस हो रही है. क्योंकि स्तंभ भी 'कथाबिंब' के प्राण हैं, ऐसी मेरी धारणा है. मुझे ख़ुद वर्षों पहले आपने 'आमने-सामने' में प्रस्तुत किया था. मंजुश्री, डॉ. अरविंद और रूपसिंह चंदेल यहां बराबर बधाई के पात्र हैं.

– प्रो. फूलचंद 'मानव'

साहित्य संगम, २३९, दशमेश एन्क्लेव,
ज़ीरकपुर, १६०१०४

▶▶ 'कथाबिंब' जन-जून २०१४ 'कहानी विशेषांक' पढ़ने में एक हफ़्ते का समय लग गया. अपनी व्यस्तताओं के बीच 'कहानी विशेषांक' होने की वजह से धैर्य और गंभीरता के साथ पढ़ना पड़ा, इसलिए भी समय लगा.

पहले तो दो कड़वे घूंट ही पिला दूं आपको कि डॉ. अरविंद, डॉ. सूर्यबाला, पुन्नी सिंह, इला प्रसाद, संतोष श्रीवास्तव आदि बड़े लेखकों से उम्मीद थी कि दिल को छू लेनेवाली कहानियां पढ़ने को मिलेंगी. लेकिन इनकी कहानियां बेहद उबाऊ, बोझिल और परिवेश से कटी हुई कहानियां निकलीं. ऐसा नहीं है कि इन लब्ध प्रतिष्ठित रचनाकारों की क्षमता, योग्यता या इनकी रचनाधर्मिता में कोई संदेह है लेकिन मुझे इनकी कहानियों में न तो कोई संवेदना नज़र आयी, न भावनात्मक रागात्मकता और न ही कोई मानवीय सरोकार. पूंजीवादी समाज की ओर बढ़ते हुए लोगों की व्यक्तिगत आपाधापी, उनकी व्यस्तता और अपने तई जीवन जीने का उनका कला कौशल जो इन कहानियों में उभरा है उससे भला आम आदमी और समाज के क्या सरोकार हो सकते हैं?

अलबत्ता, अलका सिन्हा की 'धिनाधिन.... धिन... धिनाधिन' में उन्होंने आदिवासी क्षेत्रों से बहला-फुसलाकर लायी वनबाला की मानवीय रिश्तों और उसे वेश्यावृत्ति के जिस्मानी भूख से घृणित व्यवसाय में धकेले जाने से बचाकर लायी गयी लड़की को उसके घर तक पहुंचाने की कथा अंक की सबसे सर्वश्रेष्ठ कहानी बन पड़ी है. यहां छत्तीसगढ़ में भी अकेले सरगुजा और जशपुर जिले से ही अब तक १० हज़ार आदिवासी बालाओं को उनके उज्ज्वल भविष्य का सब्ज़बाग दिखाकर रहस्यमय तरीक़े से ग़ायब कर दिया गया है. डॉ. अलका सिन्हा ने अपनी कथावस्तु में यह ज्वलंत मुद्दा उठाकर क़ानून और समाज के सामने एक बड़ा सवाल खड़ा किया है, जिसके लिए वे बधाई की पात्र हैं.

कहानी विशेषांक में ३२ कहानियां सम्मिलित हैं, जिनमें अमरीक सिंह 'दीप' की 'उसका भोजन', बद्रीसिंह भाटिया की 'सुबह होने वाली है', सुधा अरोड़ा की 'कत्लगाह', विजय की 'आशकिरण', डॉ. अनिल प्रभा कुमार की 'दीवार के पार', उषा राजे सक्सेना की 'और जल गया उसका सर्वस्व', कृष्णबिहारी की 'दो पाटन के बीच में', गजेंद्र रावत की 'बेजुबान', महेंद्र देवसरे 'दीपक' की 'बंदिशें, डॉ. दामोदर खड़से की 'अनचाहे मोड़', रणीराम गढ़वाली की 'वैतरणी पार', डॉ. रमाकांत शर्मा की 'राम रतन दुखी नहीं हो पा रहा', डॉ. रूपसिंह चंदेल की 'सुरली भौजी', मंजुश्री की 'उसका सच', डॉ. इला प्रसाद की 'वीज़ा', हरि सुमन विष्ट की 'खोयी हुई ज़िंदगी', डॉ. स्वाति तिवारी की 'उत्तराधिकारी' विशेषांक की उपलब्धि हैं.

यथार्थवादी लेखकों से सीमा के भीतर उत्कृष्ट साहित्य सृजन करवाना दुरूह कार्य होता है, जैसा कि अतिथि संपादक डॉ. रूपसिंह चंदेल ने अपनी भूमिका में स्पष्ट भी किया है. फिर भी नये पुराने लेखकों को मिलाकर २१६ पृष्ठों में इतने विपुल साहित्य को समेट कर संपादकों ने गागर में सागर भरने का काम किया है.

इन कहानियों में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आम आदमी की जिजीविषा, उसका संघर्ष, सामाजिक विद्रूपताओं, विसंगतियों और उसके विरोधाभासों के साथ ही देश-विदेश में नौकरी और निवास की तलाश में भटकते हुए लोगों की पीड़ा, निष्कासित और बर्खास्त कर दिये गये लोगों का दर्द और जिन लोगों ने ऐसे तथाकथित सभ्य समाज के हाथों केवल यातना ही पायी है, ऐसे लोगों की जद्दोजहद को बहुत ही बेहतर ढंग और बारीकी से उकेरा गया है. मानव मन की गहराइयों को भला कौन नाप पाया है, शरीर है तो उसकी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए जायज़-नाजायज़ संबंधों पर भी अब महिला लेखिकाएं खुलकर सामने आने लगी हैं, जो समकालीन कहानी की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए सकारात्मक संकेत पैदा करती हैं.

'वो अफ़साना जिसे एक मोड़ तक पहुंचाना न हो मुमकिन, उसे इक ख़ूबसूरत मोड़ देकर छोड़ना अच्छा' कुछ लेखकों ने साहिर के इस कथन को चरितार्थ करते हुए कहानी का अंत जल्दबाजी में किया लगता है. ऐसी कहानियों

में डॉक्टर अरविंद की 'पच्चीसवें माले का फ़्लैट', पुन्नी सिंह की 'पीढ़ियां पार्क में', पुष्पा सक्सेना की 'मानसी इन वंडरलैंड', बलराम अग्रवाल की 'नटवर का नानका', तेजेंद्र शर्मा की 'खिड़की', नीला प्रसाद की 'एक विधवा और एक चांद', विवेक मिश्र की 'उजाले का अंधेरा, संतोष श्रीवास्तव की 'नेफ़्रटीटी की वापसी', डॉ. सूर्यबाला की 'पंचमी के चांद की विज़िट', सूरज प्रकाश की 'हादसे ऐसे भी होंगे' और विवेक निझावन की 'कितने प्रश्न' आदि कहानियां शामिल हैं. हां, शैल अग्रवाल की 'अड़तालिस घंटे' ज़रूर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर फैले आतंकवाद पर प्रश्नचिन्ह खड़े करती है. इसी तरह शैलेंद्र तिवारी की 'उस पार' है, जो देश और समाज के आपराधिक पृष्ठभूमि वाले राजनीतिज्ञों के हाथों में देश के चले जाने पर चिंता व्यक्त करती नज़र आती है. अक्सर कहानियों के यथार्थ के साथ अनेक आकस्मिक कल्पनाएं भी जोड़ दी जाती हैं, जो उनके कथ्य को विकृत तो करती हैं लेकिन वे उनके व्यापक परिमार्जन की मांग भी करती हैं.

हमेशा की तरह लघुकथाएं और कविताएं भी अंक को वजनदार बनाती हैं. कुल मिलाकर 'कथाबिंब' के इस 'कहानी विशेषांक' जैसे बेहद श्रमसाध्य पूर्ण, कठिन किंतु संग्रहणीय अंक के लिए अरविंद जी, मंजुश्री जी, डॉ. रूपसिंह चंदेल और उनकी सारी टीम को साधुवाद. अंक लंबे समय तक साहित्य जगत में चर्चा का विषय तो बना ही रहेगा, इसमें कोई शक नहीं है.

– विक्रम जनबंधु,

संपादक, प्रेस पुलिस लहर (पाक्षिक)

क्वा.१७/ए, सड़क-एवेन्यू बी, सेक्टर-१,

भिलाई नगर-४९०००१ (छत्तीसगढ़)

▸▸ 'कथाबिंब' का जन-जून. २०१४ का संयुक्तांक पाकर ख़ुशी हुई. अरविंदजी की कहानी 'पच्चीसवें माले का फ़्लैट' पढ़कर कुछ समय पहले की वे स्मृतियां ताज़ा हो आयीं जब मैं स्वयं अमेरिका के न्यू जर्सी वाले इसी स्थान में कई बार रहा और मारबेला बिल्डिंग में भी जाया करता था. लेखक ने कहानी में कुछ दर्द भरे पहलुओं को सफलता से उभारा है. यद्यपि मुझे लगा कि कहानी का अंत कुछ आकस्मिक तरीक़े से हुआ.

हम लोग यहां भारत में जब अमेरिका और इंग्लैंड की बात करते हैं तो पाठकों को उम्मीद होती है कि वहां सब कुछ बढ़िया और ख़ुशगवार होगा परंतु उषा राजे सक्सेना की कहानी '... और जल गया उसका सर्वस्व' ने एक समांतर सच्चाई भी पाठकों के सामने खोल कर रख दी है. कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने एक जगह कहा है कि साहित्य वही सच्चा है जो कि खिड़की बनकर दुनिया दिखाये. इस संदर्भ में 'कथाबिंब' खरी पत्रिका है.

- डॉ. देवकीनंदन

बी-७०७, प्रगति अपार्टमेंट्स, सेक्टर-११,

द्वारका, नयी दिल्ली-११००७५.

▸▸ 'कथाबिंब' का कहानी विशेषांक मिला. यह अंक महत्वपूर्ण है. ऐतिहासिक है और वर्तमान स्वदेशी-परदेशी कहानी का एक बिंब प्रस्तुत करता है. वर्तमान हिंदी कहानी के लिए यह एक योगदान है.

डॉ. रूपसिंह चंदेल ने बड़ा परिश्रम किया है और अच्छी कहानियों का चयन किया है. चंदेल स्वयं कहानीकार हैं, अत: कहानी के मर्म और उसकी कलात्मकता का उन्हें गहरा अनुभव है और उनमें कहानियों को पहचानने की क्षमता है. विदेशी कहानीकारों की कहानियों से इस विशेषांक का महत्त्व और बढ़ गया है. इसकी कुछ कहानियां मैंने पढ़ी हैं. कहानी 'पच्चीसवें माले का फ़्लैट' ने मेरे सामने मैनहेटन, टाइम स्क्वायर के चित्र साकार कर दिये. मेरा छोटा बेटा मैनहेटन में रिवर साइड फ़्लैटस, स्ट्रीट-२७ में रहता था. मैं तब तीन बार अमेरिका गया तो पैदल चलकर वहां का जीवन देखा. मुझे ऐसा लगा, जैसे मेरे अनुभवों का ही आप वर्णन कर रहे हैं.

आपने कहानी में वहां के परिवेश को जीवंत कर दिया है. चंदेल की कहानी में भारतीय स्त्री का एक ऐसा रूप है जो संतान के लिए परपुरुष से संसर्ग करती है, किंतु उसकी भोगेच्छा को ठुकरा देती है. एक प्रकार से जीत भौजी की ही होती है और नायक की प्रतिशोध की आकांक्षा उसे बौना बना देती है. रवीश के पतन के लिए वह स्वयं ज़िम्मेदार है और उसका बदला लेने का तर्क उसे खलनायक बना देता है.

- डॉ. कमल किशोर गोयनका

ए-९८, अशोक विहार, फेज प्रथम,

दिल्ली-११००५२

कहानी

न भूतो, न भविष्यति

✍ कमल कपूर

किसी खूंटे से बंधी गाय की तरह चारों ओर चक्कर काटती यादें आ ठहरीं उस ठौर पर....रविवार की उस अंगारों-सी दहकती दोपहर पर... जब घंटियों की तीखी घनघनाहट और दरवाज़े पर पड़नेवाली बेशऊर थापों के मिले-जुले शोर से मन तिलमिला उठा था. ''किसको क्या तकलीफ़ हो गयी जो भरी दोपहरी में आ धमका,'' बड़बड़ाते हुए मैं दरवाज़े की ओर बढ़ी, लेकिन दरवाज़ा खोलते ही मेरी सारी तिलमिलाहट यूं उड़ गयी जैसे पिंजरा खुलते ही पाखी फुर्र हो जाता है. एकदम उजला सलवार-सूट पहने, कंधे पर छोटा-सा बैग लटकाये, मीठी मुस्कान बिखेरती धूप खड़ी थी सामने. ... मेरी बचपन की इकलौती सहेली धूप, जिसका असली नाम तो निशा था पर उसकी खिली चंपई रंगत और गोरे चेहरे पर सदा रहनेवाली सुबह की कच्ची धूप की सी नर्माई और ताज़गी पर रीझ कर मैंने ही उसे धूप नाम दिया था.

''धूप तू? इस सुलगती दोपहरी में? ख़ैर तो है न?'' मंत्र-मुग्धता की स्थिति से निकल कर मैंने पगे स्वर में पूछा तो वह अपनी मुखर हंसी का फव्वारा चला कर बोली, ''धूप हूं न? दोपहर को ही तो आऊंगी न और मैं तो ख़ैर से हूं रानी, पर तेरी ख़ैर-ख़बर लेने आयी हूं. कल से कितने ही फ़ोन किये और कितने ही मैसेज़ भी पर जवाब नदारद तो मैं घबरा गयी कि मेरी शुभ्रा ज़रूर किसी परेशानी में होगी. क्या बात है शुभी?''

''हां, परेशान तो मैं हूं धूप,'' उसका हाथ थामते हुए मैंने कहा, ''तू भीतर चल, कुछ ठंडा-वंडा पी, तब बताती हूं.''

अपनी ठंडी बैठक में हाथों में खस के शर्बत के गिलास थामे ख़ामोश बैठे थे हम दोनों कि धूप ने ख़ामोशी के शीशे को तोड़ा, ''बता न तू क्यों परेशान है शुभी?''

''इकलौती औलाद होने की सज़ा भुगत रही हूं धूप! कोस रही हूं उस घड़ी को जब रिटायरमेंट से पहले पापा को सरकारी बंगला खाली करना था तो उन्होंने मेरे और आशीष के सामने यह बात रखी थी 'कहीं और मकान बनाने से बेहतर है कि हम तुम्हारे इस घर की पहली मंज़िल पर ही घर बना लें.... इस तरह से न तुम लोगों को हमारी चिंता रहेगी और न हम लोगों को तुम्हारी और हमारे बाद हमारा घर तुम लोगों का ही तो है, चाहे यहां बनायें, चाहें कहीं और,' और मैंने आशीष के दबाव में आकर न चाहते हुए भी 'हां' कह दी थी. घर बना कर वे लोग यहां क्या आ बसे... परेशानियां ही आ बसीं. अब तो सारी ज़िंदगी परेशान ही रहना होगा मुझे,'' एक सर्द सांस ले कर कहा मैंने तो वह जैसे चाबुक बरसाने लगी मुझ पर, ''अपने मां-बाप को परेशानी कह रही है तू? क्या हो गया है तुझे शुभ्रा? मैं बचपन में अपने घर से ज़्यादा तेरे घर के आंगन में खेली-पढ़ी हूं. मुझे भी काका-काकी ने इतना ही प्यार दिया जितना तुझे देते थे. फूलों सा सहेजा तुझे और पान-पत्ते सा संभाला. मैं इसकी गवाह हूं और आज जब तेरी बारी आयी उन्हें संभालने की तो वह 'परेशानी' बन गये तेरे लिए? अरे वे दोनों बीमार हैं, उन्हें ज़रूरत है तेरी और तू...? धत् शुभ्रा! मुझे तुझसे ऐसी उम्मीद नहीं थी.''

''तब वे ऐसे नहीं थे धूप! जैसे अब हैं. अरे बीमार हैं तो शांति से रहें न! तू जानती है मेरे दायें घुटने में तकलीफ़ रहती है. 'ऑपरेशन' के बाद से डॉक्टर ने साफ़ मना किया है कि सीढ़ियां चढ़ना मौत की तरह है मेरे लिए और ये लोग इतना चीख़ते-चिल्लाते हैं. इतना उलझते-झगड़ते हैं कि मैं आशीष और बच्चों के आगे शर्मिंदा हो उठती हूं. ऊपर मैं जा नहीं सकती. वे लोग बार-बार नीचे आ नहीं सकते. कितनी ही लड़कियां एजेंसी से ला कर दीं उन्हें एक-एक कर, पर ये लोग किसी को टिकने ही नहीं देते. बच्चे भी ऊपर जाने से कतराते हैं. अब बता मैं क्या करूं?'' कहते-कहते रोना छूट गया था मेरा.

धूप ने उठ कर न मेरे आंसू पोंछे और न कुछ कहा.

जन्म : २ मई, कोटा (राजस्थान)

: प्रकाशन :

अनेक विधाओं में सक्रिय रचनाकार. 'रिश्तों के रंग', 'नैहर छूटो जाये', 'आस्था के फूल', 'छांव', 'अम्मा का चश्मा', 'नीम अब भी हरा है' (कथा-संग्रह), ज़िंदगी के मोड़', 'गुलमोहर हंस उठे', 'सुबह से सांझ तक', 'वह एक पल' (काव्य-संग्रह).

: अन्य :

नारी अभिव्यक्ति मंच 'पहचान' की अध्यक्ष तथा पत्रिका 'पहचान' की प्रधान संपादिका. अखिल भारतीय लेखिका मंच 'ऋचा' की सक्रिय सदस्य और राष्ट्रीय राजभाषा पीठ 'प्रयास' व अनेक समाज-सेवी संस्थाओं से संबद्ध.

: सम्मान :

हरियाणा साहित्य अकादमी से पुरस्कृत, राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, इलाहाबाद से 'भारती-भूषण' एवं 'भारती-रत्न' से सम्मानित. शिखर चंद जैन स्मृति पुरस्कार, श्री स्वरूप सिंह रामेसरा स्मृति सम्मान, सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार, राष्ट्रीय शिखर सम्मान सहित अनेक राष्ट्रीय व प्रादेशिक सम्मान प्राप्त.

बस चुपचाप बैठी रही... कुछ सोचती-सी. फिर कुछ देर बाद चुटकी बजा कर उत्साहित स्वर में बोली, ''मिल गया हल... गुलाब देई.''

मेरी सवालिया निग़ाह के उत्तर में उसने कहा, ''चल उठ! गुलाब देई के पास चलते हैं, अभी के अभी.''

''कौन है यह गुलाब देई? और अभी इस चिलचिलाती धूप में जाने की क्या ज़रूरत है? सांझ को चलेंगे न.'' मैंने बैठे-बैठे ही कहा तो धूप ने मेरा हाथ थाम कर मुझे खड़ा कर दिया, ''तू मोम की गुड़िया नहीं कि धूप में पिघल जायेगी और शाम तक का इंतज़ार किया तो कोई और ज़रूरतमंद उसे ले उड़ेगा.''

''पर धूप!...''

''कोई पर-वर नहीं. तू चल रास्ते में सब बताती हूं कि कौन है यह गुलाब देई!''

ड्राइविंग सीट पर बैठी... सधे हाथों से गाड़ी चलाते हुए धूप बता रही थी और मैं ए.सी. की ठंडक पीते हुए सुन रही थी.... ''चार साल पहले जब हमारा मकान बन रहा था तो वहां एक सलोनी सी युवती बेलदारी यानी मज़दूरी करती थी. उसका मिस्त्री पति मूलचंद चिनाई या कोई और काम करता और युवती या तो रोड़ी कूटती या मसाले की तगारियां सिर पर ढो-ढो कर अंदर-बाहर होती रहती. उसका दुधमुंहा बच्चा या तो पेड़ की छाया में या उस अधबने ठंडे मकान के साये में सोया-खेलता रहता. यही गुलाब देई थी, जो मुझे बहुत लुभाती थी और अक्सर अपना सुख-दुःख भी मुझसे बांटती थी. उसके साथ मेरा मन इतना मिल गया था कि मकान पूरा होने के बाद भी वह जब-तब मुझसे मिलने आ जाती.... कभी स्कूल में तो कभी घर. अपने बच्चे चीकू को लेकर बहुत ख्वाब पल रहे थे उसकी आंखों में. वह उसे ख़ूब पढ़ाना चाहती थी. फिर अचानक उसका आना बंद हो गया और क़रीब डेढ़ साल बाद पिछले हफ़्ते वह अचानक आ कर खड़ी हो गयी मेरे सामने और रोते हुए बोली, ''मेम साब! हमें काम पे रख लो जी. हम चाकरी करेंगे तिहारी और जो फूल-पत्थर देवेंगी परसाद मान कर माथे पे धर लेवेंगे.''

''पर तुम तो कहती थी बेलदारी ही तुम्हारा धर्म है. कोई और काम तुम कर ही नहीं सकती.... तो अब? तुम्हारा मिस्त्री कहां है? चीकू कहां है?''

''बखत के साथ तो सब बदले हैं न जी? बस हमारा बी बखत बदला तो हम भी बदल गये मेमसाब!''

एक आंसू की लकीर उसके कमज़ोर गालों पर खिंच आयी थी.

''ज़रा खुल कर कहो गुलाब देई. क्या हुआ है और तुम इतनी कमज़ोर और काली कैसे पड़ गयीं?'' मैंने कुरेदा तो जैसे वह बिखर गयी.

''मिस्त्री तो जी कोऊ दूजी रांड के संग जाके बैठ गया. रूप बतेरा था पर कोख ना भरी थी करमजली की सो मरद ने छोड़ दई और छुट्टी सांडनी ने काला जादू फेर के हमारे गऊ से मिस्त्री को फांस लिया. आप तो मुआ गया पर मेमसाब हमारे चीकू को भी साथ ले गया.... वा नकटी की गोद में डाल उसको माई बनने का सुख देवन को. एही लिए बस एही लिए हमें बेलदारी से घिरना हो गयी मेमसाब.'

पर मेरी भी तो मज़बूरी थी न शुभी. ऑलरेडी एक अच्छी लड़की है मेरे पास बरसों से. बेवजह उससे उसकी रोज़ी-रोटी कैसे छीन लूं मैं और फिर सारा दिन तो मैं और रजत बाहर रहते हैं. घर में काम ही क्या है. हां उस वक़्त पल भर के लिए तेरा ख़्याल आया था लेकिन यह भी पता था मुझे कि काका-काकी के पास भी एजेंसीवाली लड़की है और तेरे पास भी सारे काम वाली बाई है. फिर वह अपना पता दे गयी थी कि कोई भरोसेवाला घर हो तो उसे बताऊं. बस अब उसी के पास ले कर चल रही हूं तुझे. ईश्वर ने चाहा तो तेरा मसला हल हो जायेगा.''

''मसला तो तब हल होगा न धूप! जब गुलाब देई मिलेगी और मिल भी गयी तो क्या कह सकते हैं हम कि वह ममा-पापा के साथ निभा ही जायेगी. तू तो जानती ही है कितने सड़ियल हो गये हैं दोनों.'' मैंने हताश स्वर में कहा तो धूप बरस पड़ी मुझ पर.

''शर्म कर शुभी! अपने मां-बाप को सड़ियल कह रही है! सोच ले यही बात कल को तेरे अस्मि-अक्षत भी कह सकते हैं तेरे लिए! समय रहते सुधर जा तू.''

बात आगे नहीं बढ़ी क्योंकि 'हरी बस्ती' तक पहुंच चुके थे हम. गाड़ी भीतर नहीं जा सकती थी, सो धूप ने तीन-चार बबूल के पेड़ों के समूह की विरली कंटीली छांव में पार्क कर दिया उसे. मुझे बड़ा अटपटा सा लग रहा था... नीम, पीपल, गुलमोहर या अंबुआ की छांव तो मैंने देखी-सुनी थी पर बबूल की छांव? और अटपटा तो उस 'हरी-बस्ती' से गुज़रते हुए भी लगा कि न तो वहां हरियाली थी और न ही कोई हरी का मंदिर फिर भी नाम 'हरी-बस्ती' बल्कि तेज़ धूप की तपिश से धरती का सीना जगह-जगह से दरका हुआ था और बारिश का मौसम न होने के बावजूद भी छोटे-बड़े गड्ढों में गंदला पानी भरा हुआ था और उनके किनारे सूअर घूम रहे थे और बला की गर्मी और धूप में अधनंगे बच्चे हंस-हंस कर यूं खेल रहे थे जैसे वह भयंकर गर्म दोपहरी नहीं शरद पूनम की चांदनी रात हो. मुझे अस्मि-अक्षत का ख़्याल आ गया, जिनके होठों पर सारी सुख-सुविधाओं को भोगते हुए भी मैंने इतनी खिली हंसी कभी नहीं देखी थी.

मैली-कुचैली गैल-गलियों से गुज़रते तथा गुलाब देई का पता पूछते-पूछते अंततः हम उसके घर के सामने पहुंच ही गये. 'घर'...? बूढ़ी बल्लियों के सहारे खड़ी एक कमज़ोर झोंपड़ी जिसकी छत घास-फूस, सूखे पत्तों और प्लास्टिक से छाजी गयी थी और जिसके दीमक खाये किवाड़ पर टाट का पेबंद लगा जर्जर पर्दा लटक रहा था. वह पर्दा हटा कर हम बिना उसे पुकारे सीधे भीतर चले गये... गोया कि ग़रीब को हक़ नहीं कि उसके घर के भीतर जाने से पूर्व दस्तक या गुहार का शिष्टाचार निभाया जाये.

मैं अपने मूल्यवान साज और सामान से सजे कमरों वाले और फूलों की क्यारियों से महकते तथा लता-कलियों-गुल्मों और छायादार पेड़ों-पाखियों से चहकते, शानदार बंगले से निकल कर सीधे आयी थी एक झोंपड़ी में, जो एक घर था... गुलाब देई का घर और उसी घर की एक-एक चीज़ को निहार रही थी मैं. ... कोने में धरा मध्यम आकार का मिट्टी का मटका, एक बुझा चूल्हा, खूंटी पर टंगा रंगीन कतरनों को जोड़ कर बनाया गया एक झोला, एक आले में सजी मिट्टी के तेल की छोटी-सी ढिबरी, लकड़ी के एक पट्ड़े पर धुले धरे कुछ पीतल के बर्तन, प्लास्टिक की एक डोरी पर टंगे कुछ जनाना कपड़े और एक झिंगली सी मूंज की खाट पर इस ओर पीठ किये गुलाब देई सो रही थी.

''गुलाब देई!'' धूप ने आहिस्ता से पुकारा तो वह हड़बड़ा कर फ़ौरन उठ बैठी... जैसे नींद में भी इसी पुकार का इंतज़ार था उसे और हमें देख कर अपनी धोती का पल्लू ठीक करते हुए वह खड़ी हो गयी और शर्मिंदगी भरे स्वर में बोली, ''अरे मेम साब! आप काहे चली आयीं या नरक मा? हमें बुलाये लेतीं न, हम आय जाते.''

''ग़लत बात गुलाब देई! घर को नर्क नहीं कहते और मैं तुम्हें क्यों बुलाती? प्यासे को ख़ुद चल कर कुएं के पास आना होता है न?'' धूप ने स्नेहिल भाव से कहा लेकिन उसे कुछ समझ नहीं आया और उसने एक अक्षरीय प्रश्न पूछा हैरत से, ''मतलब?''

''मतलब यह कि हमें तुम्हारी ज़रूरत है. यह मेरी पक्की सहेली शुभ्रा है. इसके बूढ़े और बीमार मां-बाप की सेवा और सारे काम करने के लिए तुम्हारी ज़रूरत है. बोलो करोगी ये काम ?''

''काहे ना करेंगे? ज़रूर से करेंगे मेम साब,'' उसने हुलसते हुए भीगे स्वर में कहा.

''ये काम इतना आसान नहीं है गुलाब देई! वे दोनों ख़ूब चिल्ला-चिल्ली करते हैं. आपस में भी लड़ते-झगड़ते

हैं. कितनी ही कामवालियां आयीं और चली गयीं. उनके सारे काम करने होंगे और वो काम इतने ज़्यादा नहीं हैं पर उन दोनों को काबू करना बहुत मुश्किल है. मैं पहले ही बता दूं. है तुममें इतनी हिम्मत और धीरज?'' मैंने खुल कर सब बयान कर दिया, साथ ही यह भी जोड़ दिया, ''पगार तुम्हें मुंह मागी मिलेगी... ये मेरा वादा है.''

''आपको जो भावे दे देवें मेम साब! हम मुंह फाड़के कुच्छ ना कहेंगे पर हमारी बी एक शरत है के हम रोज़ आवाजाही ना कर पावेंगे. हमें रहने को ठौर-ठिकाना भी दे देवेंगी आप तो...''

उसकी बात काटते हुए धूप ने उमगते हुए कहा, ''यही तो... यही तो हमारी भी शर्त है गुलाब देई! तो फिर तुम्हारी नौकरी पक्की? चलो तुम अभी ही साथ चलो हमारे.''

''ना, अब्बी ना मेम साब! घर-गिरस्थी कौनो भरोसे वाले हाथन में थमाये के हम कल एही बखत आ जावेंगे.''

और ठीक चौबीस घंटे बाद उसी वक़्त वह हमारे घर आ भी गयी. ... ख़ुद नहीं आयी बल्कि धूप उसे जा कर लिवा लायी. दरअसल धूप के स्कूल में गर्मी की छुट्टियां थीं और उसके पति रजत भी शहर से बाहर थे. इधर आशीष भी बाहर गये हुए थे इसलिए वह अस्मि-अक्षत के साथ खेलने और बढ़िया वक़्त गुज़ारने की चाह ले कर दो दिन के लिए आयी थी और उसके आने की ख़ुशी में मैंने भी उस दिन ऑफ़िस से छुट्टी ले ली थी. बहरहाल धूप गुलाब देई को ले कर आयी और उसका हाथ थाम कर ममा-पापा के पास ले गयी. मैं भी बैठ-बैठ कर सीढ़ियों की दुर्गम चढ़ाई चढ़ती ऊपर पहुंच गयी थी. आशा के अनुरूप ही एक अत्यंत लज्जास्पद दृश्य खड़ा था वहां. ममा चीख़ रही थीं, ''ये किस नमूने को उठा लायी तुम धूप? दफ़ा करो इस गंवार को यहां से'' और उनके चुप होते ही पापा भड़क उठे, ''ये मरियल-सड़ियल सी छोकरी क्या हमारे काम संवारेगी? यह तो शक़्ल से ख़ुद ही बीमार नज़र आती है. हमें छोड़ दो तुम लोग हमारे हाल पर और जाओ अपने काम करो.''

मैं शर्म से पानी-पानी हो रही थी और सांकेतिक भाषा में धूप से कह रही थी कि इसे लेकर नीचे जाओ पर गुलाब देई हल्के से मुस्कुरायी. ... सिर पर आंचल ठीक से ओढ़ा और आगे बढ़ कर ममा के क़दमों में झुक गयी, ''पाय लागें अम्मा जी!'' फिर पापा के क़रीब गयी और उनके पांव छू कर मिठास से बोली, ''पाय लागें बाबूजी!'' और जैसे चमत्कार हो गया. ... पापा ने उसके सिर पर हाथ धर कर कहा, ''जीती रहो बेटी.'' और ममा के नयन-कोर भी भीग आये. फिर गुलाब देई ने कहा, ''हम सब संभाल लेवेंगे मेम साब! हमें चौका दिखाय दो और काम समझाय दो.''

धूप और मैंने मिल कर उसे सब समझा दिया कि कैसे कम घी-तेल और बिना मिर्च-मसाले का खाना बनाना है. उन्हें कब दूध और फल देने हैं और कब दवाई देनी है वग़ैरह-वग़ैरह. उसने उसी पल से काम शुरू कर दिया. धूप के कहने से मैंने तीन हज़ार रुपये खाने-कपड़े सहित उसे देने तय किये. ... तय मैंने और धूप ने किये पर देने ममा-पापा को थे. ... स्वाभाविक था कि उनके पास पैसे की कमी भी न थी.

अगले दिन धूप अस्मि-अक्षत को साथ ले गयी और जाते-जाते मुझे समझा गयी, ''उसे प्यार से रखना शुभी. तुम उसे प्यार दोगी न तो वह सब ख़ूब अच्छी तरह संभाल लेगी. लड़की मेहनती भी है और समझदार भी. टिक कर रहेगी. मुझसे कह रही थी कि मर्दों की भूखी नज़रों से बचने के लिए उसे जिस सुरक्षित घर की ज़रूरत थी वह उसे मिल गया है. उसने बहुत कष्ट झेले हैं शुभी! बाप दूसरी औरत के लिए उसकी मां को छोड़ गया तो मां भी कम नहीं निकली उसे मिस्त्री मूलचंद के हाथ बेच कर दो बच्चों को नानी के घर छोड़ कर दूसरी जगह जा बैठी. मिस्त्री ने इसे छोड़ दिया तो अकेली काम खोजने के लिए सुबह-सुबह मज़दूर-चौराहे यानी 'लेबर-चौक' पर जाने लगी. वहां ऐसी नज़रों से देखती थी हर निग़ाह, जैसे वह 'लेबर-चौक' में नहीं कोठे पर धंधा करने बैठी हो. काम मिलता तो वहां भी यही हाल. पढ़े-लिखे तथाकथित ऊंचे घराने के एक ठेकेदार तक ने इससे यही कहा, गुलाब देई! जितना तू महीने भर कमायेगी, मैं तुझे एक बार में ही दे दूंगा. ... बस मेरा 'काम' कर दिया कर जब मैं चाहूं.'' इसने उसका मुंह नोच लिया था और कसम खायी थी कि ज़िंदगी भर बेलदारी नहीं करेगी. घरों के काम पकड़े तो कम-ज़्यादा वहां भी यही हाल. अब जा कर शायद सुर्खरू हो पाये. ध्यान रखना... हां.''

और मैंने धूप की बात को आंचल के छोर से कस कर बांध लिया था.

शनिवार की रात आशीष लौट आये और रविवार

की सुबह ममा-पापा से मिलने ऊपर गये और घंटे भर बाद लौटे तो गद्‌गद्‌ थे. ''शुभी! क्या कमाल की लड़की खोज कर लायी हो तुम! घर को स्वर्ग बना दिया है और मिठबोली इतनी है कि ... इतने मीठे लफ़्ज़ों का इस्तेमाल कर मुझे नाश्ता करने को कहा कि मैं मना नहीं कर सका.''

मैंने राहत और तसल्ली की सांस ली. दिन गुज़रते रहे. .. ममा-पापा के झगड़ों की भी आवाज़ें मेरे कानों तक पहुंचती रहीं और चीख़ने-चिल्लाने की भी लेकिन गुलाब देई की तनिक सी भी ऊंची आवाज़ कभी न सुनी मैंने! फिर ममा-पापा की ऊंची आवाज़ें भी कम होते-होते एक दिन बंद हो गयीं तो बड़ा अटपटा सा लगा मुझे. ... सब कुछ ठंडा-ठंडा और अनचीन्हा सा तो मुझे फ़िक्र हुई और एक रविवारीय दोपहर को मैं गिरती-पड़ती ऊपर पहुंची और चुपचाप दहलीज़ पर खड़ी उस अज़ब-गज़ब नज़ारे को आंखों से घूंट-घूंट भर पीने लगी. ... गुलाब देई ममा के बालों में तेल लगा रही थी मुस्कुराते हुए और पापा हंस रहे थे. ... शायद मेरे आने से पहले हुई किसी बात पर. मुझ पर दृष्टि पड़ी तो एकदम गंभीर होकर होंठ सी लिये उन्होंने. मेरी पलकें नम हो गयीं और उनके पास जा कर गले में अपनी बाहों का हार डालते हुए मैंने दुलार से कहा, ''पापा! काले धन की तरह अपनी हंसी को छुपाइए नहीं. खुल कर हंसिए न! मुझे बहुत अच्छा लग रहा है.''

और वह मुस्कुरा दिये. गुलाब देई ने उस दिन मेरी यूं ख़ातिर की जैसे बेटी की सही मायने में मायके में होती है. पूर्ण तृप्त और निश्चिंत मन लिये लौटी थी मैं.

ये दिनों का 'दर्शन-शास्त्र' भी बड़ा विचित्र है, जब ये अच्छे दौर से गुज़रते हैं तो हवाई जहाज से भी ज़्यादा तेज़ रफ़्तार पकड़ लेते हैं. इसी तर्ज़ पर एक साल गुज़र गया और इस एक साल में बहुत कुछ बदला. ... ममा-पापा के बीच का वह प्रेम जिससे मेरा बचपन और यौवन सिंचा था और कालांतर में उनकी बीमारियों ने जिसे सुखा दिया था, फिर हरियाने लगा था. उनके स्वास्थ्य में तो कम सुधार हुए पर अपनी बीमारी से लड़ना-सहना उन्होंने सीख लिया था और अगर गुलाब देई ने उनके घर में सुथराई, शांति और प्रेम रोपे थे तो उन्होंने भी गुलाब देई को बदलाव दिये थे. उसका पहरावा बदल गया था, बोलने का ढंग बदल गया था. इधर-उधर की घाट-घाट की मिली-जुली खिचड़ी भाषा बोलनेवाली गुलाब देई अब हमारी तरह ही खड़ी बोली बोलती थी और सबसे बड़ा परिवर्तन यह कि अब वह गुलाब देई से गुलाब हो गयी थी. ममा ने उसे गुलाब पुकारना शुरू किया तो हम सबकी जुबां पर यही नाम चढ़ गया.

वह वेतन नहीं लेती थी. उसे ज़रूरत ही नहीं पड़ती थी इसलिए मैंने उसके नाम बैंक में खाता खोल दिया और उसका वेतन उसमें जमा होने लगा. हर साल उसके पैसे बढ़ाये जाते थे और इस तरह उसके खाते में ढेरों रुपये जमा होते चले जा रहे थे.

बिजली की तरह फुर्ती से काम करती वह और ममा-पापा के घर के कामों के अलावा मेरे भी कई काम संवारती थी वह. सरसों के गर्म तेल में हींग, हल्दी, लहसुन, अजवाइन जला कर मेरे घुटनों की नियमित रूप से मालिश कर-कर के उसने मुझे इस योग्य बना दिया था कि मैं आराम से सीढ़ियां चढ़ने-उतरने लगी थी. ममा-पापा के बाज़ार के कामों के साथ-साथ वह मेरे बाज़ार के काम भी निपटाने लगी थी और न जाने कब मैं मेमसाब से उसकी 'जीजी' बन गयी थी. ... शायद वह ख़ुद को ममा-पापा की बेटी ही समझने लगी थी. ... शायद नहीं यक़ीनन.... तभी तो कई बार ममा-पापा मुझसे ज़्यादा उसे अहमियत देते थे, जो मुझे अच्छा नहीं लगता. मैंने धूप के सामने अपना मन खोला तो वह झिड़कते हुए बोली, ''तू जल रही है शुभी? किससे? उससे, जिसने सिर्फ़ काका-काकी को ही नहीं तेरे पूरे घर को चैन की सांस दी... नयी ज़िंदगी दी! जो कोई न कर सका. ... तू भी नहीं, वह उसने किया, ख़ुद को सिद्ध करके. तुझे तो उसका शुक्रगुज़ार होना चाहिए.''

शुक्रगुज़ार तो थी मैं उसकी लेकिन एक कांटा था जो निरंतर चुभता था हिया में कि मैं बेटी होकर भी अपने जन्मदाताओं के लिए कुछ नहीं कर पायी. मुझसे ज़्यादा तो आशीष ही कर लेते थे उनके लिए. उनके अपने माता-पिता नहीं थे शायद इसलिए वह अपेक्षाकृत अधिक समर्पित थे उनके लिए. उनमें ही आशीष को अपने दिवंगत मां-बाबू जी नज़र आते थे.

पांच साल गुज़र गये. ... कम नहीं होते पांच साल और एक रात मेरे दिल के मरीज़ पापा सोये तो ऐसे सोये कि अगली सुबह उठे ही नहीं. रात के किस पल उनके दिल की धड़कन रूठ कर चली गयी, यह कोई नहीं जान पाया

पर आंसुओं की उस नदी में भी सब्र की एक नाव तैर रही थी कि पापा ने अंतिम बेला में न कष्ट सहा और न किसी को तकलीफ़ दी. ... बस ख़ामोशी से चले गये. वह दृश्य कभी नहीं भूल सकती मैं. ... पापा के पार्थिव शरीर के सिरहाने बैठी थीं ममा सूखी और सूनी आंखों के साथ. ... चुप्पी के धागे से होंठ सिये. ... फिर चुप्पी की बखिया उधड़ी. ... पापा की पलकों पर हाथ रखते हुए वह धीमे स्वर में बोलीं, ''आप जाओ जी शुभी के पापा! ... बेफिक्र होकर जाओ. मेरी फिक्र नहीं करनी आपको. मरे पास शुभी है, बच्चे हैं और गुलाब है.'' साथ ही आंसुओं की नन्हीं-नन्हीं बूंदें उनकी सूनी आंखों से टपक कर पापा के ठंडे जड़ चेहरे को भिगोने लगीं और फिर सहसा ममा को कुछ याद आ गया और वह आंचल के छोर से अपने माथे पर सजी कुमकुम की बिंदिया पोंछने लगीं, पर गुलाब ने तड़ित गति से आगे बढ़ कर उनका हाथ थाम लिया और दृढ़ स्वर में बोली, ''ना अम्मा जी! हम ये ना होने देंगे. बाबूजी को आपकी ये बिंदिया बड़ी भाती थी. इसे मिटाने ना देंगे हम.''

उस पल यूं लग रहा था जैसे ममा मेरी नहीं गुलाब की मां हैं और जब ''राम नाम सत्य है'' की ध्वनियों सहित पापा अपनी अंतिम महायात्रा के लिए निकले तब भी वह जिस तरह रो रही थी. .... विलाप कर रही थी.... उसे कोई अनजाना आदमी देखता तो यही सोचता कि इसी लड़की के पिता मरे हैं।

पापा की कहानी ख़त्म हो गयी लेकिन दुनिया के लिए. ... हमारे लिए नहीं. ममा ने उनके जाने का गम दिल में गहने की तरह सजा लिया था जैसे. हम सब मिलकर कोशिश कर रहे थे उन्हें शमशान बैराग से खींच कर सामान्य दुनिया में लाने की पर हार गये और जीत आख़िर गुलाब की ही हुई. उसने सामने दीवार पर टंगी पापा की तस्वीर पर चढ़ी पुष्प-माला उतार दी और बोली, ''अम्मा जी! आप तो बस ये सोचो जी कि हमारे बाबूजी कहां ना गये. वो यहीं हैं हमारे साथ. ये देखो जीजी के भीतर हैं वो और ये देखो...'' अस्मि और अक्षत को हाथ पकड़ कर उनके सामने.... एकदम क़रीब खड़ा कर दिया और अपनी बात पूरी की,'' ये अपने नाती-नातिन के बीच भी तो हैं न बाबूजी. अब बोलो.''

और अस्मि-अक्षत को अपने सीने से भींच कर ममा रोने लगीं.....ख़ूब रोयीं ... ख़ूब-ख़ूब.... शायद इतना कि एक लंबे अर्से से जमा दिल का दर्द आंसू बन कर नयन-द्वार से बाहर निकल गया. लोग मरते हैं पर उनकी यादें नहीं मरतीं, वह तो दिल के गांव को सदा-सर्वदा आबाद किये रहती हैं. सो पापा की यादें उनका पर्याय बन गयीं. हम उन्हें क्षण भर भी नहीं भूले पर उनके बिना जीना सीख लिया हमने. ममा का स्वास्थ्य गिरता-संभलता रहा दो-चार बरस तक. हम सब तो सिर्फ़ उनके नाम को अपने थे, असल अपनी तो गुलाब ही थी. उनकी बैसाखी... उनकी छाया... उनकी बेटी और एक दिन जैसे मां बन गयी उनकी. ममा पलंगशायी हो चुकी थीं. 'वॉशरूम' तक भी उन्हें सहारा दे कर ले जाया जाता था. अपने बाल भी नहीं संवार पाती थीं वह.... नहाना-धोना तो दूर की बात और ये सारी की सारी ज़िम्मेदारियां गुलाब ने अपने नाजुक हाथों में नर्म फूलों की तरह संभाल रखी थीं.

समय के अश्व फिर तेज़ी से दौड़ने लगे और खट्टी-मीठी ज़िंदगी जीते पांच और बरस बीत गये. पापा को गये पांच साल हो चुके थे और गुलाब को इस घर में आये पूरे दस बरस. जब वह यहां आयी थी तो अस्मि आठ साल की थी और अक्षत छ: साल का. अब वे क्रमश: अठ्ठारह और सोलह साल के थे. धूप अपने स्कूल की प्रधानाचार्या बन चुकी थी और पहले की तरह जल्दी-जल्दी न आ पाती थी. एक तरह से वह 'चार्ज़र' थी मेरी... जो मेरे अंदर शक्ति और उष्मा का संचरण करती थी.

यादें जुगाली ख़त्म कर अपने खूंटी के उसी ठौर पर आ रुकी थीं, जहां से उन्होंने अपना सफ़र शुरू किया था. एक बेहद उदास दिन... या तो बदलते मौसम का असर था या आने की ख़बर देकर भी धूप के न आने की निराशा या कुछ अव्यक्त और अकथित व्यथाएं और कुंठाएं. मन जौ भर भी चैन नहीं पा रहा था तो मैंने अस्मि-अक्षत को बुला कर कहा, ''बच्चों! तुम दोनों जा कर कुछ देर नानी मां के पास बैठो और गुलाब दीदी को मेरे पास भेज दो और देखो जब तक गुलाब दीदी न लौटें. ... तुम्हें नानी मां के पास ही बैठना है और उनकी देखभाल करनी है.''

आज्ञाकारी बच्चों की तरह वे ''जी मम्मा!'' कह कर तुरंत चले गये और कुछ देर बाद गुलाब मेरे सामने खड़ी थी.

''जीजी! आपने हमें बुलाया? कोई ख़ास बात?''

''अरे नहीं गुलाब! कुछ ख़ास-वास नहीं. बस तुमसे

दो ग़ज़लें

✍ देवी नागरानी

दिल था वो शीशे का कोई घर न था,
फेंकना उस पर कोई पत्थर न था.
'मारना है बेगुनाहों को गुनाह',
उसके इस फरमान का क्या डर न था.
बनके इक पत्थर की पायल रह गयी,
दिल कोई घायल उसे सुनकर न था.
मोम करके रख दिया पाषाण को,
काम इससे दूसरा बढ़ कर न था.
कर दिया बर्के-तपां ने दर-ब-दर,
वर्ना पंछी कोई भी बेघर न था.
राह के पत्थर हटा कर रख दिये,
वो मुसाफिर था, कोई रहबर न था.

वो करके जुर्म ख़ुद कब अपने सर इल्ज़ाम लेते हैं,
सितम ये देखिए जो दूसरों का नाम लेते हैं.
रहे हैं ख़्वाहिशों के जाम खाली ही, न भर पाये,
मगर तौबा कभी करने का कब वो नाम लेते हैं.
फ़रेबों की रिदा जो ओढ़कर आ बज़्म में बैठे,
दिखाने को, शराफ़त का वो दामन थाम लेते हैं.
कहीं तक़रीर लिख भेजी, कहीं रचना, ग़ज़ल, दोहे,
बदल के हम तो उन्वां यूं क़लम से काम लेते हैं.
सिखा जाती है कब ये ठोकरें उनको संभलना, जो
अंधेरों में जहां से छिप-छिपाकर जाम लेते हैं.
ये हिंदू हैं, ये मुस्लिम हैं, ये सिख ईसाई हैं 'देवी',
लड़ाने को हमें, क्यों लोग इनका नाम लेते हैं.

✉ ९-डी, कॉर्नर व्यू सोसायटी, १५/३३ रोड, बांद्रा, मुंबई-४०००५०.
मो. ९९८७९२८३५९

बतियाने को जी चाहा तो बुला लिया,'' मैंने मुस्कुरा कर कहा तो वह इठला कर बोली, ''नहीं जीजी! हम नहीं मानते. कोई तो बात है. आप आज अलग-सी दिख रही हैं.''

''आओ! तुम बैठो तनिक मेरे पास,'' मैंने उसका हाथ थाम कर अपने पास बैठा लिया और कुछ पल तक उसे अपलक निहारती रही. उसने घबरा कर हाथ छुड़ा लिया और बोली, ''आप हमें ऐसे काहे देख रही हो जीजी?''

एक दीर्घ नि:श्वास के साथ मैंने अपनी ख़ामोशी को तोड़ा, ''दस साल... पूरे दस साल हो गये तुम्हें यहां आये हुए गुलाब, पर मैंने कभी तुम्हें ग़ुस्से में नहीं देखा, सच-सच बताओ क्या तुम्हें कभी ग़ुस्सा नहीं आता?''

''काहे ना आयेगा ग़ुस्सा जीजी? हम भी हाड़-मांस के बने मानुस ही तो हैं न? हम अपने ग़ुस्से को भीतर ही रहने देते हैं, बाहर ना आने देते क्योंकि हम जानते हैं कि ग़रीब को ग़ुस्सा करने का हक़ कतई ना है.''

''ग्रेट! ग़ज़ब का सब्र है तुममें गुलाब. कैसे इतना धीरज धर पाती हो? तुमने एक महीने में ही ममा-पापा को बदल दिया था. कैसे कर पायी थी तुम वह सब?''

''प्रेम से... जीजी! प्रेम में बड़ी ताकत होती है. प्रेम तो पाहन में भी प्रान डाल देता है जीजी ...'' उसने और भी बहुत कुछ कहा. एक निपट निरक्षर रोड़े कूटने वाली हरी बस्ती की गुलाब देई एक मल्टीनेशनल कंपनी की वरिष्ठ अधिकारी एम. बी. ए. शुभ्रा चौधरी को प्रेम का पाठ पढ़ा रही थी. अभी बहुत सी जिज्ञासाएं बाक़ी थीं मेरी.

''ज़रूर तुमने ममा-पापा में अपने मां-बाप का रूप देखा होगा तभी इतनी लगन से सेवा कर पायी उनकी है न गुलाब ?''

''ना जीजी! हमारे माई-बापू आदर के जोग ना हैं. बापू लंपट और झूठे पत्तलों में मुंह मारनेवाला और माई बेटी-बेचवा और देह-सुख की ख़ातिर अपने जायों को अंधी

खाई में फेंकनेवाली. उस बेला में हमारे दिमाग़ में तो बस हमारा बच्चा था. जीजी! हमारा चीकू दो शक्लों में बंट कर अम्मा जी बाबूजी में दिख रहा था हमें और हमने ठान ली थी उस घड़ी कि अपने बालक की नाई उन दोनों की देख-रेख करेंगे. बस...''

''तुम सही कह रही हो गुलाब! कभी तुम उनकी बेटी बनी और कभी मां. अब भी ममा अक्सर तुम्हें 'मां' कह कर पुकारती हैं न? पर मैं उनकी कोख से जन्म लेकर भी उनकी बेटी ही न बन पायी तो मां क्या बनती?'' एक घायल कराह के साथ मैंने कहा तो उसने मेरा हाथ थाम लिया, ''ऐसा काहे कह रही हो जीजी? आपकी जगह कोई ना ले सके कभी.''

''मुझे बहलाओ मत गुलाब! अपनी कमज़ोरियों का पता है मुझे पर अब मैं इन्हें दूर कर ममा की अच्छी बेटी बनने की कोशिश करूंगी. तुम मेरी मदद करोगी न? एक उपकार और होगा तुम्हारा मुझ पर. ... तुम्हारे पहले सारे उपकारों की तरह. सच तुमने हमारी ज़िंदगी संवार दी गुलाब!''

''हमने आपकी नहीं, आपने हमारी ज़िंदगी संवारी है जीजी! आपने और धूप जीजी ने. हम तो घूरे में पड़े बेपढ़े गंवार मज़दूर जीव थे, जिसे उठा कर आप इस महल में ले आये. यह आपका परताप है जो मोटा-झोंटा खाने-पहनने वाले हम आज ए. सी. वाले कमरे में सोते हैं, बढ़िया खाते हैं और बढ़िया पहनते हैं. देखो, अब भी रेशम पहने हैं. हमें ऐसा मंदिर दिया आपने जहां तक भूखे भेड़ियों की नज़रें ना पहुंच सकीं कभी. जीजी! हम जो भी आप सबके... लिए करें बहुत कम होगा जीजी.''

''बस-बस-बस गुलाब! तुम्हें जो भी मिला है, तुम्हारी अपनी लगन, मेहनत और प्रेम का फल है. जानती हो लाखों रुपये हैं तुम्हारे बैंक के खाते में और आशीष ने कितनी तो एफ. डी. करायी हैं तुम्हारे नाम. तुमने कभी एक पैसा भी ख़र्च नहीं किया. अब इतने रुपयों का क्या करोगी गुलाब?'' मैंने हंसते हुए बातचीत का विषय बदल दिया पर वह तो गंभीर हो गयी और दर्द की एक पनीली बदली उसकी आंखों में उतर आयी.

''आधे तो हम असमी बेबी को देंगे, जब वो डॉक्टरी की पढ़ाई करने जायेंगी और आधे अपने चीकू को देंगे, जब वो लौट के आवेगा,'' एक बुझी सांस ले कर कहा उसने.

''तुम जानती हो चीकू कहां है?''

''ना.... ना जानते हम पर इत्ता जानते हैं हमारा मुन्ना लौट के आवेगा अपनी अम्मा के पास. चार बरस बाक़ी हैं उसके आने में.''

''तुम्हें कैसे पता कि वह चार बरस बाद आयेगा ही सही?'' हैरानी भरे स्वर में पूछा मैंने.

''रामचंदर जी भी तो चौदह बरस बाद लौटे थे ना जीजी, अयोध्या बन से तो हमारा मुन्ना भी इत्ते ही बरस में आवेगा. दस बरस बीत गये चार बाक़ी हैं,'' उसके स्वर में अखंड-अटूट विश्वास था.

''राम जी तुम्हारे विश्वास की लाज रखें गुलाब! मैं भी उनसे बिनती करूंगी पर एक बात मेरी समझ में नहीं आयी कि तुम्हारी कमाई पर सिर्फ़ तुम्हारे चीकू का ही हक़ बनता है, फिर तुम अस्मि की पढ़ाई पर क्यों ख़र्च करोगी?''

''जीजी! चीकू से हमारा जनम-नाल का नाता है तो असमी बेबी से पालने का. हम अपने चीकू की बड़ी जीजी मानते हैं बेबी को.''

उसकी उजली भावनाओं के आगे नतमस्तक हो कर आभार जता पाती हूं कि इससे पूर्व ही अक्षत की पुकार सुनायी दी, ''मम्मा! नानी मां हमसे नहीं संभल रही. वो शोर मचा रही हैं कि मेरी मां को बुला दो. मम्मा! नानी मां की मां कहां रहती हैं?''

मैंने गुलाब की ओर देखा तो वह मुस्कुराने लगी, ''अम्मा जी ने बिस्तरा भिगो दिया होगा. जा कर बदलते हैं हम.''

पल भर को मेरे भीतर की बेटी जागी, जो कहने को हुई, ''तुम रहने दो गुलाब! मैं किये देती हूं यह काम,'' लेकिन कह नहीं सकी... कह ही नहीं सकती थी क्योंकि मैं मतलबी, आरामपरस्त और अकृतज्ञ शुभ्रा चौधरी थी. ... समर्पित और निःस्वार्थ गुलाब नहीं और मैं कभी गुलाब बन भी नहीं सकती थी. मैं क्या मेरे सामाजिक दायरे में दूर-दूर तक न कभी कोई गुलाब जैसा हुआ और न कभी होगा. 'न भूतो, न भविष्यति.'

२१४४/९ सेक्टर
फरीदाबाद-१२१००६
मो. ९८७३९६७४५५
ई-मेल : kamal_kapur2000@yahoo.com

कहानी

थैंक्यू वेरी मच

✍ ताराचंद मकसाने

मैं 'आशा ट्रस्ट' के प्रतीक्षा कक्ष में रविकुमार का इंतज़ार कर रहा था, उनके आगमन में कुछ वक़्त था, तब तक मैं तिपाई पर रखी कुछ पुरानी पत्रिकाओं में से एक पत्रिका के पन्ने पलटने लगा, अभी चार पन्ने ही पलटे थे कि हल्की-सी आहट से मेरा ध्यान विचलित हुआ, दायीं ओर मुड़कर देखा तो रविकुमार मेरी ओर बढ़ रहे थे, मैं तत्क्षण खड़ा हो गया, रविकुमार ने पास आकर लगभग मुझे खींचते हुए अपने गले लगा लिया, उनकी आंखों से आंसू टपकने लगे, वे रुंधे कंठ से बोले — ''आलोक, तुम्हारी बदौलत मेरी वीरान ज़िंदगी में फिर से ख़ुशियों की बहार आयी है, थैंक्यू वेरी मच.''

''सर, मैंने कुछ नहीं किया है. यह सब आपकी ही मेहनत का फल है.'' मैंने उनसे अलग होते हुए कहा.

''आलोक, मैं एकाकी ज़िंदगी से तंग आ चुका था, अगर तुम मुझे वक़्त पर नहीं मिलते तो न जाने क्या होता ?'' रविकुमार आंसू पोंछते हुए बोले.

रविकुमार से मेरी मुलाकात वाशी रेल्वे स्टेशन के बाहर स्थित गणपति मंदिर में एक दिन अचानक हुई थी, वे मंदिर के प्रांगण में रखी एक बेंच पर अख़बार पढ़ रहे थे. पहले तो मैंने उन्हें पहचाना नहीं, उनका हुलिया बड़ा ही अजीब लग रहा था. पीला चेहरा, बढ़ी हुई सफ़ेद दाढ़ी, बिखरे-रूखे-लंबे मटमैले बाल, आंखों पर लटकता पुराने फ़ैशन का चश्मा, मैला कुर्ता-पायज़ामा. मैंने अपने दिमाग़ पर थोड़ा ज़ोर डाला तो याद आया कि यह शख़्स रविकुमार ही है. वे मेरे सीनियर अधिकारी थे. मैं उनके ही अधीन काम करता था. वे बैंक से दो-एक साल पहले ज़नरल मैनेज़र के ऊंचे ओहदे से सेवा निवृत्त हुए थे.

बैंक में उनका रुतबा कुछ अलग ही था. साहब के केबिन में जाने से पहले हम सौ बार सोचते थे, फिर ही आगे क़दम बढ़ाते थे और भीतर जाने से पूर्व अपने हुलिए का एक बार जायजा ज़रूर कर लेते थे वरना भीतर उनकी फटकार सुननी पड़ती थी, जैसे 'ऑफ़िस में आये हो या सब्ज़ी मंडी में' या 'क्या बिस्तर से उठकर सीधे ऑफ़िस में आ रहे हो?' किसी कर्मचारी के बाल बिखरे होने पर वे अपनी मेज की दराज से कंघी निकाल कर देते हुए कहते थे — ''जाओ, पहले अपने बाल ठीक करके आओ.''

मेरे मानस पटल पर रवि कुमार की कार्यालयीन छवि किसी फ़िल्म की तरह अंकित होने लगी — सूट-बूट और टाई में सज़ा उनका आकर्षक व्यक्तित्व, करीने से सजे बाल, आंखों पर फ्रेम में जड़े इंपोर्टेड ग्लासेस, क्लीन शेव, चेहरे पर तेज़ और अधरों पर सवार मंद मुस्कुराहट उनके व्यक्तित्व की शालीनता में चार चांद लगाती थी. बैंक का हर कर्मचारी उनके लुभावने एवं शालीन व्यक्तित्व का कायल था. मैंने उन्हें बैंक में कभी बग़ैर सूट-टाई नहीं देखा था. जब वे अपने केबिन से बाहर निकलते थे तो विभाग में एक कोने से दूसरे कोने तक उनके जूतों की चरमर-चरमर की आवाज़ से हम जान जाते थे कि जी एम साहब आ रहे हैं. मुझे याद है, एक बार उन्होंने किसी कार्यक्रम में कहा भी था — ''मैं हमेशा घर से दफ़्तर के लिए इस तरह तैयार होकर निकलता हूं मानो मुझे किसी शादी में जाना है.''

रवि कुमार अख़बार पढ़ने में मशगूल थे, मैं उनके क़रीब पहुंचा और डरते हुए पूछा —

''सर, क्या आप रवि कुमार हैं?''

''हां, मैं रवि कुमार ही हूं.''

''सर, आपने मुझे पहचाना, मैं आलोक शर्मा, मैं आपके विभाग में ही था.'' मैंने एक ही सांस में किंचित उत्साहित होते हुए कहा.

उन्होंने नाक पर लुढ़क आये साधारण चश्मे को बीच की उंगली से आंखों के क़रीब खिसकाते हुए मुझे घूरकर देखा तो उनके पीले चेहरे पर मुस्कुराहट की एक लकीर उभर आयी, फिर धीरे से मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए बोले — ''यस, यस, याद आया, कैसे हो मिस्टर आलोक ?''

जन्म : १९ अगस्त १९५९, दौंड, जिला-पुणे,
बी. कॉम.

: लेखन :

दिल्ली प्रेस की पत्रिका 'सरिता', 'मुक्ता' में फ़िल्मी कलाकारों के ढेरों साक्षात्कार प्रकाशित जिनमें स्मिता पाटील, नौशाद अली, आनंद बख्शी, सई परांजपे, डॉ. जब्बार पटेल, अमीन सयानी, पीनाज मसानी, दादा कोंडके, अशोक सराफ, अशोक पत्की, रोहिणी हट्टंगडी, वनराज भाटिया, नाना पाटेकर, सदाशिव अमरापुरकर, महेंद्र कपूर, अलका याज्ञिक, सुरेश वाडकर आदि प्रमुख हैं. पिछले कुछ समय से बच्चों के लिए कहानी लेखन, 'सुमन सौरभ', 'बालभारती' में कई कहानियां प्रकाशित.

: विशेषः

८० के दशक में लंबे समय तक 'कथाबिंब' के लिए संपादकीय सहयोग करने का सौभाग्य मिला जो मेरे लिए गर्व की बात है. साथ ही 'कथाबिंब' के लिए प्रसिद्ध व्यंग्यकार शरद जोशी का साक्षात्कार करने का अवसर नसीब हुआ जिसे मैं अपने जीवन की एक उपलब्धि मानता हूं.

: संप्रति :

भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई में सहायक प्रबंधक.

''सर, मैं ठीक हूं पर आप ठीक नहीं लग रहे हैं.'' मैंने उनकी भीतर धंसी हुई आंखों में झांकते हुए कहा.

''अरे भई, मैं ठीक ही तो हूं, अब मेरी उमर भी तो हो गयी है.'' उन्होंने टालते हुए कहा.

मैंने बात ज़्यादा आगे बढ़ाना उचित नहीं समझा पर इतना अवश्य जान लिया था कि वे मुझ से कुछ छिपा रहे हैं.

''क्यों आलोक तुम्हारा प्रमोशन हुआ या नहीं? उन्होंने अख़बार बंद करके एक ओर रखते हुए कहा.''

''जी सर, आपके रिटायर होने के चार महीने बाद ही मेरा प्रमोशन हो गया. सर, अब मैं मैनेजर बन गया हूं.'' मैंने उत्साहित होकर कहा.

''कांग्रेच्युलेशन्स.'' उन्होंने मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा.

''सर, इस प्रमोशन का श्रेय आपको जाता है. मैंने अंग्रेज़ी ड्राफ़्टिंग तो आप ही से सीखी है. जब आप केबिन में बुला-बुला कर मुझे अपनी ग़लतियां दिखाते थे तब मुझे थोड़ा ग़ुस्सा आता था पर इन्हीं ग़लतियों से मैंने बहुत कुछ सीखा. सर, मैंने वे सभी ड्राफ़्ट संभालकर रखे हैं जिनमें आपने करेक्शन्स किये थे.''

''आलोक, मैं इंग्लिश लिटरेचर में एम. ए. हूं.'' रवि कुमार ने सीना फुलाते हुए कहा.

''सर, मैंने अंग्रेज़ी तो आपसे ही सीखी है. मुझे इससे बहुत फ़ायदा हुआ. विभागीय परीक्षा के दिनों में आप अंग्रेज़ी की कक्षाएं चलाते थे, मैं आपकी कक्षा में नियमित रूप से आता था. सर, एक बात कहूं, अंग्रेज़ी सिखाना तो कोई आपसे सीखे. आप बहुत ही सरल तरीक़े से अंग्रेज़ी सिखाते थे. अब अंग्रेज़ी लिखने और बोलने का डर भी दूर हो गया है तथा मेरा आत्मविश्वास भी बढ़ा है.'' मैंने हक़ीकत बयां की तो रवि कुमार के नेत्र सजल हो गये.

वे मेरे गले में हाथ डालते हुए रुंधे कंठ से बोले — ''आलोक, शायद तुम्हें मालूम होगा, हिंदी में एक कहावत है कि घर की मुर्गी दाल बराबर होती है. यह कहावत इन दिनों मेरे साथ चरितार्थ हो रही है. मेरा पोता अपनी स्कूल-टीचर के पास इंग्लिश-ट्यूशन के लिए जाता है. मेरे पास कौन आयेगा. आई एम अन्वान्टेड ओल्ड मैन.''

कहते हुए उन्होंने पलकें झपकायीं तो आंखों में आंसू उतर आये. मेरी आंखें भी नम हो गयीं. मैंने विषय बदलते हुए पूछा — ''सर आपने, यह क्या हुलिया बना लिया है ? कहीं आप बीमार तो नहीं हैं ?''

''नहीं आलोक, मैं बीमार नहीं हूं, पर अब रिटायर हो गया हूं तो सोचता हूं कि मुझे ऑफ़िस तो जाना नहीं है फिर सजधज कर क्या करूं ? और अब मेरे पास कुछ काम भी तो नहीं है.'' उन्होंने दो टूक उत्तर दिया.

''सर, ऑफ़िस नहीं जाना है तो क्या हुआ, पर इस हुलिए से तो आप बीमार लगते हैं. सर, मुझे अच्छी तरह याद है, आप विभाग में हमसे अक्सर कहते थे कि हमारा पहनावा स्वच्छ और शालीन होना चाहिए. मैं आपके विभाग में कई वर्षों तक था पर मैंने आपको कभी अस्त–व्यस्त रहते नहीं देखा था. सर, सलीके से रहना भी तो मैंने आप से ही सीखा.'' मैंने अतीत में ले जाते हुए कहा.

''यू आर राइट मि. आलोक, पर अब मेरा जोश और उत्साह ठंडा पड़ गया है.'' उन्होंने निरुत्साहित भाव से कहा.

''सर, आपकी रिटायरमेंट लाइफ़ कैसी गुज़र रही है ? आप दिन भर क्या करते हैं ?'' मैंने उन्हें कुरेदते हुए पूछा.

''सच कहूं तो मैं रिटायरमेंट के बाद बहुत अकेला हो गया हूं. समय काटना मुश्किल हो गया है. सुबह उठकर मॉर्निंग वॉक पर जाता हूं फिर अख़बार पढ़ता हूं. सुबह का नाश्ता करने के बाद मंदिर जाता हूं तब तक भोजन का वक़्त हो जाता है. खाना खाने के बाद घंटाभर सो जाता हूं. दोपहर में मेरा पोता स्कूल से आता है तब उसे मैं खाना गरम करके खिलाता हूं. जब वह सो जाता है तब मैं कुछ पत्रिकाएं पढ़ता हूं. छ: बजे के आसपास मेरी बहू ऑफ़िस से घर आ जाती है. जब वह अपने लिए चाय बनाती है तब मुझे भी चाय-नाश्ता मिल जाता है. शाम को फिर वॉकिंग और मंदिर के लिए निकल जाता हूं. क़रीब आठ बजे घर पहुंचता हूं और खाना खाकर अपने कमरे में सोने के लिए चला जाता हूं. बिस्तर पर देर रात तक करवटें बदलता हूं क्योंकि दिन में सोने की आदत पड़ जाने से रात में देर तक नींद नहीं आती है.'' उन्होंने अपनी नीरस दिनचर्या का बखान किया.

''सर आपके परिवार में कौन-कौन हैं?'' मैंने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की.

''आलोक, यह तो तुम्हें मालूम ही है कि मेरी पत्नी मिताली का निधन पांच वर्ष पहले हो गया था. मेरे दो बेटे हैं. एक यू एस में अपनी पत्नी के साथ रहता है. मैं दूसरे बेटे के पास रहता हूं. वह एक मल्टीनेशनल कंपनी में नौकरी करता है तथा उसकी पत्नी एक प्राइवेट बैंक में नौकरी करती है. दोनों सुबह आठ बजे ही घर से निकल जाते हैं. दोनों इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें मुझसे बात करने का भी वक़्त नहीं मिलता है.'' अल्पविराम के बाद उन्होंने अपनी बात ज़ारी रखते हुए कहा — ''मेरा एक पोता भी है, वह भी बहुत व्यस्त रहता है. स्कूल से आने के बाद होमवर्क करने में उसका बहुत समय व्यतीत हो जाता है फिर वह ट्यूशन के लिए चला जाता है. ट्यूशन से आने के बाद ट्यूशन क्लास का होमवर्क पूरा करता है. फिर शाम को कंप्यूटर पर गेम्स खेलता है और बचे हुए समय में टीवी के फूहड़ प्रोग्राम्स देखता है. सप्ताह में कभी-कभी एकाध बार अपने बेटे, बहू या पोते से बातचीत हो जाती है. आलोक, आज के बच्चों के पास अपने दादा-दादी की गोद में खेलने, उनसे बतियाने की फ़ुर्सत कहां है? दादा-दादी से कहानियां सुनना तो अब 'कहानी' बन गयी है ?'' यह कहते हुए वे फिर गंभीर हो गये.

''सर, आप दोपहर में टीवी क्यों नहीं देखते ?'' मैंने विषय बदलने के इरादे से कहा.

''अरे, आलोक, टीवी पर आता ही क्या है जो मैं देखूं ? मुझे टीवी के अधिकांश कार्यक्रम कतई पसंद नहीं हैं. आज टीवी पर जो परोसा जा रहा है वह हमारी युवा पीढ़ी को गुमराह कर रहा है. बच्चे पुस्तकों और खेल के मैदानों से दूर हो रहे हैं. आज टीवी पर दिखाये जानेवाले ज़्यादातर सीरियलों के बीच एक ही परिवार के सदस्यों के बीच दूरियां और प्रतिशोध का भाव बढ़ाने की होड़ लगी हुई है. कुकुरमुत्तों की तरह फैल रहे न्यूज़ चैनल्स अपराध की ख़बरों का नाट्य रूपांतर द्वारा अपराधी को हीरो बना रहे हैं. ऐसा करके ये चैनल्स समाज के प्रति अपने किस कर्त्तव्य का पालन कर रही हैं मेरी समझ में नहीं आ रहा है. टीवी पर रातों-रात अमीर बनने और एक रात में 'इंडिया का डान्स स्टार' तैयार होने जैसे कार्यक्रमों की बाढ़ आ गयी है. जेल में जानेवाले और जेल से सज़ा काटकर बाहर आनेवाले अपराधियों को कवरेज़ देने के लिए हमारे टीवी रिपोर्टर घंटों पलकें बिछाये रहते हैं और ये लोग हाथ हिलाते हुए दर्शकों का इस तरह अभिवादन करते हैं मानो इन्होंने राष्ट्र के लिए कोई महान काम किया है. टीवी हमारे समाज को एक ऐसी दुनिया में ले जा रहा है जिसका हक़ीकत से कोई वास्ता नहीं है.''

मैंने उनके बदलते मूड को देखते हुए पूछा — ''सर, आपने एक बार कहा था कि दुनिया में उत्साह से बढ़कर कोई बल नहीं है और यह उत्साह मैंने आप में लंबे समय तक देखा है. आपके रिटायरमेंट के आख़िरी दिन तक यह उत्साह आप में बरकरार था फिर यह अचानक कहां ग़ायब हो गया ?''

''आलोक, जब काम नहीं रहा तो उत्साह भी नहीं रहा. दिन भर घर पर बैठे-बैठे बोर हो जाता हूं. पढ़ने का शौक़ है पर कितना पढ़ूं. अधिक समय तक पढ़ नही सकता हूं अब आंखें भी कमज़ोर हो गयी हैं. मैं घूमने भी जाता हूं पर आदमी कितने समय तक घूम सकता है. वाशी में मेरे

कई मित्र है पर रोज़ किसके घर जाकर टाइम पास करूं ? मैं रोज़ाना मंदिर भी जाता हूं पर मंदिर में कितनी देर तक बैठूं?'' उन्होंने अपनी मजबूरी व्यक्त करते हुए कहा.

''सर, आप बुरा न माने तो एक सलाह दूं ?'' मैंने साहसपूर्वक कहा.

''श्योर, श्योर, बोलो, क्या सलाह देना चाहते हो?'' उन्होंने अविलंब कहा.

''सर, खारघर में 'आशा ट्रस्ट' नामक एक अनाथाश्रम है. वाशी से खारघर अधिक दूर नहीं है. इस ट्रस्ट में ५ वर्ष से लेकर १४-१५ साल तक की अनाथ लड़कियां रहती हैं जिनके पालन-पोषण तथा शिक्षा की सारी ज़िम्मेदारी संस्था की है. ये बच्चे वहां के स्वामी विवेकानंद हाईस्कूल में पढ़ने जाते हैं. फिलहाल संस्था में ३० लड़कियां हैं जो कक्षा पहली से कक्षा दसवीं में पढ़ती हैं. सर, मैं प्रत्येक शनिवार तथा रविवार को इन बच्चों को हिंदी पढ़ाने के लिए जाता हूं. मेरा एक मित्र इन बच्चों को गणित पढ़ाता है पर अंग्रेज़ी पढ़ानेवाला हमें नहीं मिल रहा है. यहां के अधिकांश विद्यार्थी अंग्रेज़ी में काफ़ी कमज़ोर हैं. सर, यह निशुल्क सेवा है. मेरा यह सुझाव है कि यदि आप इन लड़कियों को अंग्रेज़ी पढ़ाने का बीड़ा उठायें तो इनका भविष्य संवरेगा और आपका समय भी कट जायेगा.''

मैंने उनकी सहमति की प्रतीक्षा किये बिना थोड़ा रुककर कहा — ''सर, मुझे विश्वास है कि आप मेरे अनुरोध पर अवश्य विचार करेंगे.''

रवि कुमार मेरी बात बड़े ध्यानपूर्वक सुन रहे थे. कुछ समय तक वे आंखें मूंद कर विचार करने लगे फिर एकाएक उत्साहित होते हुए बोले — ''आलोक, आई एम रेडी. तुम संस्था के ट्रस्टी से बात कर लेना. मुझे बच्चों को पढ़ाना अच्छा लगता है. मैं यह भी मानता हूं कि दुनिया में विद्या दान ही सर्वश्रेष्ठ दान है.''

''सर, बहुत-बहुत धन्यवाद. शुभस्य शीघ्रम मैं अभी 'आशा ट्रस्ट' की सचिव शिवानी जोशी से मोबाइल पर बात करता हूं.''

मैंने ख़ुशी से उछलते हुए कहा और शिवानी से फ़ोन पर सारी बात कर ली एवं उनसे समय भी निश्चित कर लिया, फिर रवि कुमार की ओर मुखातिब होते हुए कहा — ''सर आप कल सोमवार को सुबह १० बजे 'आशा ट्रस्ट' पहुंच जाना. वहां पर संस्था की सचिव शिवानी जोशी से मिलना जो आपको बच्चों को पढ़ाने का टाइम टेबल बता देंगी.''

मैंने उनसे विदा ली. वे भी उत्साहित होकर अपने घर की ओर रवाना हो गये.

एक सप्ताह के बाद मैं एक रविवार के दिन सुबह क़रीब १०.३० बजे 'आशा ट्रस्ट' में पहुंचा. शिवानी जोशी से मुलाकात हुई तो पता चला कि रवि कुमार के आ जाने से बच्चे बहुत ख़ुश हैं. ट्रस्ट में बच्चों को न केवल अंग्रेज़ी के एक अच्छे अध्यापक मिल गये हैं अपितु बच्चों को कहानियां सुनाने और उनके साथ हंसने-खेलने वाले दादाजी भी मिल गये हैं. बच्चे तो उन्हें एक पल छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं. वह रवि कुमार की तारीफ़ के पुल बांधने लगीं.

''इस समय रवि कुमार क्या कर रहे हैं ?'' मैंने पूछा.

''वे कक्षा चौथी के बच्चों की एक्स्ट्रा क्लास ले रहे हैं क्योंकि अगले रविवार को उनकी स्कॉलरशिप की परीक्षा है.'' शिवानी ने कहा.

''यह क्लास कब तक छूट जायेगी?'' रवि कुमार से मिलने की उत्कंठा से मैंने पूछा.

''बस, दस मिनट में छूट जायेगी'' शिवानी ने दीवार घड़ी की ओर देखते हुए कहा.

मैं प्रतीक्षा कक्ष में बैठ कर सुस्ताने लगा तथा रवि कुमार के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा. मेरे बगल में एक सज्जन भी बैठे थे जो अख़बार पढ़ने में मशरूफ़ थे. ठीक दस मिनट के बाद दायीं ओर से जूतों की चरमर-चरमर की चिरपरिचित आवाज़ आने लगी, मैं एकाएक तनकर बैठ गया और अपने पास बैठे अजनबी सज्जन के हाथ से अख़बार छीनते हुए बोल पड़ा — ''अरे पेपर पढ़ना बंद करो, देखते नहीं, जीएम साहब आ रहे हैं!''

मगर जब उस सज्जन ने आंखें तरेरकर मेरी ओर देखा तो मुझे अपनी ग़लती का एहसास हुआ कि अरे, मैं अपने कार्यालय में नहीं, 'आशा ट्रस्ट' में बैठा हूं, फिर रवि कुमार तो रिटायर हो चुके हैं! मैंने उनसे माफ़ी मांगी और तुरंत चरमर-चरमर की आवाज़ की ओर बढ़ गया जो अब तक मेरे काफ़ी क़रीब आ चुकी थी.

मैंने आंख उठाकर देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा. मेरे सामने उसी मूरत का आगमन हो रहा था जो

लघुकथा

डर

✍ कमलेश भारतीय

वह सुबह उठा. नहा-धोकर, हल्का-फुल्का नाश्ता कर दफ़्तर जाने के लिए तैयार होने लगा. जूते पहनने लगा तो अचानक एक जूते का फीता कसते-कसते टूट गया. इतना समय नहीं बचा था कि बाज़ार जाकर नये फीते ख़रीद लाता. जैसे-तैसे पुराने फीते कसे. एक छोटा रह गया, दूसरा बड़ा. दफ़्तर यह सोचकर रवाना हुआ कि शाम को नये फीते ख़रीद लेगा.

दिन भर दफ़्तर में बैठे-बैठे उसका ध्यान बार-बार अपनी जूतों पर जाता रहा. एक बड़े व दूसरे छोटे फीते पर जाता रहा. वह मेज़ के पीछे जूतों को ज़्यादा से ज़्यादा छिपाने की कोशिश में लगा रहा. दूसरे कर्मचारी देखेंगे तो कितना बुरा लगेगा. वैसे भी हम यही तो सोचते रहते हैं कि दूसरे सोचेंगे तो कैसे लगेगा? आज उसे इस बात पर और भी ग़ौर करने का मौक़ा मिला.

जैसे-तैसे शाम आयी. वह सीधा एक बड़े से मार्केट में पहुंचा. एक से एक बड़ा जूतों का शो-रूम. सिर्फ़ एक जोड़ी फीते चाहिए थे उसे तो. किस शो-रूम में जाये? चकाचौंध कर देने वाली रोशनियों के बीच चमचमाते जूते. कहीं भी फीते दिखाई नहीं दे रहे थे. सहमे-सहमे एक शो-रूम में दाख़िल हुआ. अपने पुराने जूतों पर उसे ख़ूब शर्म व संकोच महसूस होने लगा. कहीं पढ़ी हुई कविता भी मन में गूंजने लगी, 'हर आदमी एक जोड़ी जूता है जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है.' वह ऐसा ही महसूस कर रहा था – जैसे सेल्समैन के सामने अपनी औक़ात जानना चाहता हो.

संकोच में फीतों के बारे में पूछा. सेल्समैन ने बड़ी हैरानी से उसे देखा और अपने पेशे की विनम्रता को मुश्किल से संभालते हुए अगले शो-रूम की ओर इशारा कर दिया. वह फिर दूसरे शो रूम के सेल्समैन के सामने खड़ा था. लोग एक से एक जूते पहन कर देख रहे थे. उसे तो सिर्फ़ दो जोड़ी फीते चाहिए थे. सेल्समैन पहले शो रूम के सेल्समैन से ज़्यादा विनम्र नहीं था. उसने घूरा और पूछा – 'तुम्हें यह भी नहीं पता कि इतने बड़े शो-रूम में फीते नहीं बिकते, नये जूते लेने हों तो बताओ, दिखा देता हूं.

सभी शो-रूमों में ऐसे ही स्वागत के बाद वह बाहर निकल आया. देखा लोग फास्ट फूड खा रहे हैं और कप प्लेट फेंक रहे हैं. उसे महसूस हुआ जैसे बड़े शो-रूम वाले सेल्समैन यही समझाने की कोशिश कर रहे थे – जनाब, यह यूज़ एंड थ्रो का ज़माना है, आप फीते ढूंढ़ रहे हैं. फेंको इन जूतों को और नये ख़रीदो. आम आदमी कहां जाये ? इसलिए वह आज तक जूतों पर एक छोटा व बड़ा फीता डाले घूम रहा है और डरता रहता है कि कोई देख न ले.

उपाध्यक्ष, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला (हरियाणा). मो. ९४१६०४७०७५.

कभी हमारे विभाग में अवतरित होती थी, सूट-बूट और टाई में सजी आकर्षक और रौबीली शख़्सियत अब साक्षात मेरे समक्ष थी.

मैं अतीत से वर्तमान में आया. मिस्टर रवि कुमार चश्मा उतारकर मेरे पास बैठ गये. तब तक आशा ट्रस्ट की सचिव शिवानी जोशी और बच्चे भी प्रतीक्षा कक्ष में पहुंच गये. बच्चों ने रवि कुमार के पैर छुये तो उन्होंने बच्चों को अपनी बाहों में भींच लिया और फिर कुछ बोलने के लिए मुंह खोला पर कंठ इतना रुंध गया, वे चाहकर भी कुछ बोल नहीं पा रहे थे. उन्होंने बच्चों के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और जेब से रुमाल निकालकर उसमें आंसुओं को समेटते हुए 'आशा ट्रस्ट' की सीढ़ियां उतरने लगे.

बच्चे रवि कुमार को तब तक देखते रहे जब तक वे उनकी नन्ही-नन्हीं चमकती आंखों से ओझल नहीं हो गये.

बी-७९, रिजर्व बैंक कॉलोनी,
मराठा मंदिर मार्ग, मुंबई सेंट्रल,
मुंबई- ४००००८.
मो. ९९६९३७५८५१

दो ग़ज़लें

✍ रामकुमार पटेल 'यार'

क्यूं अंधेरा आफ़तों का इस क़दर छाया हुआ है,
ये उमंगों का उजाला मुझसे घबराया हुआ है ।
क्या है नीरस ज़िंदगी में दर्दो-ग़म को छोड़कर अब,
फूल इक राहत का है सो वो भी मुरझाया हुआ है।
भर गयी मुझमें उदासी ही ज़माने भर की शायद,
देखकर मुझको मिरा उत्साह कतराया हुआ है।
दिल का गुलशन ये मिरा होगा नहीं गुलज़ार क्या अब,
पतझड़ों ने तो ग़ज़ब का ज़ुल्म ये ढाया हुआ है।
टूटकर बिखरे है सारे दिल के अरमां हर तरफ़ ही,
बेरहम होकर ज़माना क़हर बरपाया हुआ है।
दिल पे दस्तक देके ख़ुशियां रुख़ बदल देती हैं यारो,
मुस्कुराहट के लिए ग़म लब को तरसाया हुआ है।
ख़्वाब ख़ुशियों का दिखाकर ग़म ही दे देता है ज़ालिम,
किस तरह मेरा मुक़द्दर मुझको बहलाया हुआ है।

रहने दो पर्दे में पर्दे के बाहर दुनिया नहीं मालूम,
आया है किस भेष में ख़ुद का मगर उसे हुलिया नहीं मालूम ।
दरिया का ये सैलाब कहीं ले न जाये उसको बहा कर दूर,
कश्ती से साहिल तक पहुंचा दो उसको पुलिया नहीं मालूम ।
साहिल पे उसका घर है और मर रहा है प्यास में कुछ दिन से,
पानी की मगर तलाश कहां करे अब तक दरिया नहीं मालूम ।
ये छलिया भौंरा इस मुहल्ले से उस मुहल्ले में मंडरा रहा है,
इसको अब तक तो महकभरे फूलों की बग़िया नहीं मालूम ।
चलती जाती है जीवन की गाड़ी वक़्त के साथ ही साथ यह,
कहते हैं लोग मगर कैसी हैं पटरियां-पहिया नहीं मालूम ।
जल्दी से कब पहुंचेगी मंज़िल तक ये गाड़ी नहीं है ज्ञात,
नींद आ रही है सफर में और कहां सोये खटिया नहीं मालूम ।
थामकर जरा हाथ, उसकी मंज़िल तक तो पहुंचा दे मेरे 'यार',
जंगल में राह से भटक गया है ख़ुद की कुटिया नहीं मालूम, ।

✉ २७/१, बटाऊपाली 'ब', पो.-गोड़ा, वाया-सारंगढ़, जिला-रायगढ़ (छत्तीसगढ़),
मो. : ८१०३७५४६२३, ८९८२३७२२३५

लघुकथा

आइना

✍ कमलेश भारतीय

मैं मर चुका हूं. अभी मेरी श्रद्धांजलि सभा चल रही है. मेरी आत्मा श्रद्धांजलि सभा में ही भटक रही है. मेरी आत्मा की शांति की दुआएं की जा रही हैं, पर मुझे शांति नहीं मिल रही है. जिसे देखो, मेरे बारे में झूठ बोले जा रहा है. कोई कह रहा है कि इतने साल का रिश्ता था, कोई कह रहा है कि मैं इनके बहुत क़रीब रहा. मेरी तारीफ़ों के पुल बांधे जा रहे हैं. इतने कि मैं भी नहीं जानता कि मैं इतना अच्छा था. मुझे हर कोई अपने बहुत निकट बता रहा है. वे भी जो बरसों से मुझे नहीं मिले. वे भी जो क़दम-क़दम पर मेरा विरोध करते रहे.

कुछ चेहरे तो आज श्रद्धांजलि सभा में ही देख रहा हूं. कहां थे ये इतने बरसों से? जीवन में कितने ही बड़े-बड़े संघर्ष, झंझावात, आंधी, तूफ़ान आये, तब मैंने इनसे मदद मांगी और ये पतली गली से कहां निकल गये, पता ही नहीं चला. आज ही दोबारा देख पा रहा हूं इनको. आज मेरे परिवार को हर मदद देने का विश्वास दिला रहे हैं. मेरी हंसी छूटने वाली है, पर ऐसे मौक़ों पर हंसी से मेरी हंसी उड़ जायेगी. मैं जैसे किसी आइने के सामने खड़ा हूं और अपना ही नहीं दूसरों का चेहरा बड़ी आसानी से देख पा रहा हूं. चलो, मेरी आत्मा को शांति मिली. श्रद्धांजलि सभा ख़त्म हो गयी है. मैं भी शांति से जा रहा हूं क्योंकि सच की तस्वीर देख कर ही जा रहा हूं.

✉ उपाध्यक्ष, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला (हरियाणा). मो. ९४१६०४७०७५.

कहानी

सर्पदंश

✍ रिया शर्मा

"अरे...आप रहने दें. आप क्यों कष्ट करते हैं. मैं उठा लूंगी. हमारा जन्म हुआ ही इन कामों के लिए है."

वह बसंत को रोकते हुए ख़ुद टेबल से चाय के खाली कप और बचे हुए बिस्किटों की प्लेट उठाते हुए कहती हैं. बसंत उनके इस तंज पर खिसियाते हुए हमारी तरफ कनखियों से देखते हैं और अपनी वही हो... हो... वाली चिरपरिचित हंसी हंस देते हैं.

पति-पत्नी के इस तरह एक-दूसरे को अपरोक्ष रूप से ताना मारने को लेकर मैं कभी सहज नहीं हो पाती हूं. मैं विराज की तरफ़ देखती हूं. बहुत देर हो चुकी थी. उनसे विदा लेकर हम दोनों बाहर आ जाते हैं.

बसंत और विराज पिछले एक वर्ष से एक ही ऑफ़िस में काम कर रहे हैं. उनके घर चाय पर जाने का हमारा यह दूसरा मौक़ा था. श्रीमती बसंत बहुत ज़िंदा दिल और सरल महिला हैं. ख़ूब हंसी मज़ाक करती, वे मिलनसार कही जा सकतीं हैं. परंतु इसके साथ ही वे औरत भी हैं. औरतें परेशान होकर थोड़ा चिड़-चिड़ कर लेती हैं परंतु भड़ास निकल जाने पर फिर वही दुलार और स्नेह लुटाती घर परिवार संभालने लगती हैं.

"लोग अपने आपसी मुद्दे अपने बीच ही क्यों नहीं निबटा लेते? मेहमानों की आड़ में इस तरह अपनी बात रखना मुझे कतई नहीं जंचता." मैंने गाड़ी स्टार्ट करते विराज की तरफ़ देख कर कहा. गाड़ी स्टार्ट हो चुकी थी फिर भी वह हमेशा की तरह हम्म्म के सिवा कुछ नहीं बोला. वह अक्सर ऐसा ही करता है. उसकी इस तरह मेरी बातों को दबा देने की आदत पर मुझे खीज आने लगती है. चिढ़ कर फिर कहती हूं — "क्या मालूम मिसिज़ बसंत के अंदर के मौसम का हाल क्या है? हर औरत के भीतर अनेकों कहानियां होती हैं. यदि औरतों को अपनी व्यथा और ग़ुस्से को कई परतों के नीचे दबा कर रखने का हुनर आता है तो मौक़ा मिलने पर तंज के रूप में बख़ूबी निकालना भी आता है."

वह मेरी तरफ़ ऐसी नज़रों से देखता है कि जैसे मैंने कोई बेवकूफी भरी बात कह दी हो और उसका उत्तर देना उसकी विद्वता को ललकारना हो. फिर से हम्म्म करता है और फिर सामने देखते हुए उसी रफ़्तार से गाड़ी चलाता रहता है. मुझे उसकी यही बेरुखी बुरी लगती है.

"पत्नी के व्यंग बाणों से खिसियाया हुआ पुरुष मुझे दयनीय लगता है. बसंत भाईसाब की शक्ल देखी. कैसी अज़ीब सी हो गयी था. सच मुझे तो बुरा लगा." मैंने फिर कहा और जल्दी ही अपना बयान मुझे ख़ुद पर ही भारी पड़ता मालूम हुआ. तुरंत उसमें सुधार करते हुए जोड़ दिया, "परंतु पुरुष ऐसे हालात ही क्यों पैदा करते हैं कि इस तरह की परिस्थिति में जा फंसे? मिसिज़ बसंत का इतनी ऊंची डिग्रियां लेकर घर पर निठल्ले बैठे रहना... शायद यही उनकी कुंठा का कारण हो."

मैं उत्तर की प्रतीक्षा में फिर विराज की तरफ़ देखती हूं. वह उसी तरह और उसी रफ़्तार से कार चलाता रहा. जैसे कि मेरी बातें सुनना और उन पर ध्यान देना दुनिया का सबसे वाहियात काम है. मैं अपने आपसे ही बात करने लगती हूं. वह इस पर बोलेगा भी क्या! उसकी ख़ुद की सोच भी तो वही है. बल्कि उसे तो श्रीमती बसंत की बात एकदम सही लगी होगी. औरतों का जन्म केवल घर-बच्चे संभालने के लिए ही होता है. उसका भी कुछ ऐसा ही मानना है.

जब मैं उसकी तरफ़ से उत्तर आने की सभी उम्मीदें छोड़ चुकी थी, वह तब बोला — "औरत घर की धुरी होती हैं. घर के सभी लोग उससे बंधे रहते हैं. इसलिए उसको वही सब देखना संभालना चाहिए. घर से बाहर निकल कर औरत बोल्ड हो जाती है और मर्दाना-सा व्यवहार करने लगती है. उसके वे स्त्री सुलभ गुण धीरे-धीरे लुप्त हो जाते हैं. फिर रह ही क्या जाता है औरत में?"

मुझे उसके ये भाव जान कर कोई आश्चर्य नहीं हुआ. शादी के छह महीने बाद जब मैंने उसके सामने कॉलेज

जन्म : उत्तराखंड (रानीखेत); अब दिल्ली में निवास

: लेखन :

कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन

: संप्रति :

आउट बाउंड टूरिज़्म और स्वतंत्र लेखन

दोबारा ज्वाइन करने की बात उठायी थी तब उसने मुझे कुछ ऐसा ही जवाब दिया था. यहां तक की माता जी ने भी मुझे ख़ुशी-ख़ुशी ज्वाइन करने की अनुमति दे दी थी, परंतु विराज नहीं माना था. मैंने उसे अपनी बात बहुत समझायी थी. कॉलेज में प्रोफ़ेसर होना मेरे लिए गर्व की बात थी.

''विराज, सुबह दस बजे तक घर के सारे काम निपट चुके होते हैं, तब जाना है और दो बजे तक हर हाल में वापस आ जाया करूंगी. इससे अच्छा और क्या हो सकता है. फिर इसी तरह काम करती रही तो जल्दी ही पक्की हो जाऊंगी. तनख्वाह भी बढ़ी हुई मिलेगी. हाथ को हाथ का सहारा होता ही है.''

इस बात पर वह तिलमिलाया था और कैसे तमक कर बोला था, ''देखो राधिका तुमसे और तुम्हारे घर वालों से मैंने पहले ही कह दिया था मुझे नौकरी करने वाली पत्नी नहीं चाहिए. उस समय तुमने और तुम्हारे बाबूजी ने झट हामी भर दी थी. अब इस फितूर को फिर से शुरू करने का क्या मतलब है?''

''विराज पूछ ही रही हूं. ज्वाइन तो नहीं कर लिया न मैंने ?''

रूंआसी होकर मन की इच्छा दबाती हुई और मैं कह क्या सकती थी? सोचा था सुबह सारे काम निबटा कर दस बजे कॉलेज जाओ और दो बजे तक घर वापस. इस बीच घर पर और कोई काम भी नहीं था. घर पर केवल पिछले साल रिटायर हुए स्नेही बाबूजी और सूझ-बूझ वाली ममतामयी अम्मा जी थीं. उन दोनों को कोई आपत्ति नहीं थी. परंतु विराज के दिमाग़ से पत्थर की लकीर की तरह खिंची बात वह मिटा नहीं सकी. उसने दोबारा यह बात फिर कभी नहीं उठायी.

तब से आज आठ वर्ष हो गये हैं. ज़िंदगी अपने हिसाब से बनती-बिगड़ती ठीक ही कट रही है. शानू छह वर्ष का हो गया और पहली में आ गया है. स्कूल से दो बजे उसकी छुट्टी हो जाती है. बाबूजी और अम्मा सुबह साढ़े सात बजे उसे स्कूल के लिए बस स्टॉप तक छोड़ते हुए पार्क में टहलने चले जाते हैं. दोपहर में दो बजे उसी जगह पर उसे लेने. इस बहाने उन दोनों की टांगें सीधी हो जाती हैं. ऐसा सभी का मानना है. घर बस स्टॉप से महज दस मिनिट का पैदल रास्ता है. पोते के लाड़ में हंसते–खेलते, उसकी छोटी-छोटी ज़िदों को पूरा करते तीनों अढ़ाई बजे तक घर पहुंच जाते हैं. पोते को रास्ते में कई काम होते हैं. मसलन पत्थरों के घर बनाना, वहीं सड़क किनारे खेलते हुए काम वालियों के बच्चों को देखना और रानी धोबन के बिल्ली और कुत्तों के बच्चों से खेलना. परसों बगल वाली जोशी ऑन्टी कितना भुनभुना रही थीं.

''पता नहीं मरे जब देखो ब्याये ही रहते हैं. अपने कई बच्चों के साथ धोबन के ख़ुद के खाने का ठिकाना होता नहीं. परंतु कुत्ते, बिल्ली ज़रूर पालेंगे. राम जाने क्या रिवाज है इनका.''

जब औरत कुछ और नहीं कर पाती है तो भुन-भुन ही करती है. वह अपनी साड़ी प्रेस कराने की जल्दी में थी और रानी है कि पिल्लों को पुचकारती उनकी रोटी को दूध में भिगोने में तल्लीन थी. ऑन्टी को रोकती हुई बोली थी, ''ऑन्टी जी दो मिनट रुक जाओ बस अब्बी आयी. बेचारे सुब्बे से भूखे हैं. हाय ये भी हमारी तरै हुए कि नहीं?''

''सुसरे एक बार अपने बच्चों की ममता न दिखायें परंतु इन पिल्लू-टिल्लू को ज़रूर पुचकारेंगे. राधिका उनके लिए मुझे रोक दिया उस रानी की बच्ची ने...... मुझे ? त्योहारों पर आयेगी मुझसे बख्शीश मांगने. तब बताऊंगी. यूं नो राधिका दीज़ इल्ललिटरेट पीपल...''

ऑन्टी के स्वाभिमान को कितनी ठेस लगी थी. रानी क्या जाने. आज जोशी ऑन्टी रिटायर हो गयी हों तो क्या. आख़िर दो वर्ष पहले तक वह सोफ़िया कॉलेज में अंग्रेज़ी की प्रोफ़ेसर थीं.

बहरहाल शानू को घर लाने में अम्मा-बाबूजी को कई बार तीन भी बज जाते हैं. मैं घड़ी देखती हुई खीजती रहती हूं. इनको तो कोई काम है नहीं. सब हाथों हाथ जो मिलता है. कब वे आयेंगे, कब खायेंगे...? मैं अपनी टांगें कब सीधी करती हूं इसकी किसी को क्या चिंता? मुझे सब समेटते हुए और शाम की तैयारी करते हुए अक्सर चार बज जाते हैं. कभी फ़ुर्सत में अपने वक़्त से पहले झुर्रियां पड़ते खुरदरे हाथों पर क्रीम लगाते हुए याद करती हूं. किस तरह कॉलेज में लड़कियां मेरे नर्म मुलायम, सुंदर हाथों के लंबे तराशे हुए नाखूनों पर गहरे रंग की क्यूटेक्स लगाने की ज़िद किया करती थीं. सब कुछ न जाने कहां छूट गया है. इस अल्प समय के आराम के बीच कभी-कभी अम्मा की आवाज़ आ जाती है.

''वो क्या है न बहू मैं कह रही थी बेटा थोड़ा तू भी लेट लेती पर ये कंबख़्त बुढ़ापा. इस समय तक कभी-कभी चाय की तलब लग जाती है.''

अम्मा और बाबूजी ने घर पर दूध की थैलियां लगाने से मना किया है. इसलिए चाय पीकर दोनों दूध लाने के बहाने शाम को भी थोड़ा टहल लेते हैं. तब तक मैं शानू को होमवर्क कराती हूं. साथ में सुबह के धुले कपड़े उठाने और प्रेस करके सभी की अलमारियों में लगा देने का काम भी निबटाती रहती हूं. छह बजे तक अम्मा-बाबूजी दूध और ताजी सब्ज़ियां लेकर घर पहुंच जाते हैं. उनके चेहरे पर एक दूसरे के साथ टहलने की ख़ुशी देख कर मुझे ऑफ़िस में व्यस्त रहते विराज का ध्यान आने लगता है. हो सकता है उम्र के इस पड़ाव तक पहुंचने पर वह मुझे वक़्त दे सकें.

मेरे भीतर इस बात को लेकर कभी-कभी कुछ सुलगने-सा लगता है. एक दिन सोचा अम्माजी के अनुभवों से कुछ सीखा जाये. मां अक्सर कहती हैं बुजुर्गों के पास अनुभवों का खजाना होता है. इसलिए एक दिन अम्मा से पूछ लिया.

''अम्मा आप और बाबूजी शुरू से ही इतने ही प्रेम से रहते हैं? क्या पहले से ही बाबूजी आपको इतना वक़्त देते थे? आप अपने तीन बच्चों और घर गृहस्थी को कैसे संभालती थीं?''

मेरे सवालों का कोई अंत ही नहीं था. उन्होंने स्नेह से अपनी हिरण-सी मासूम आंखों से मेरी तरफ़ देखा और

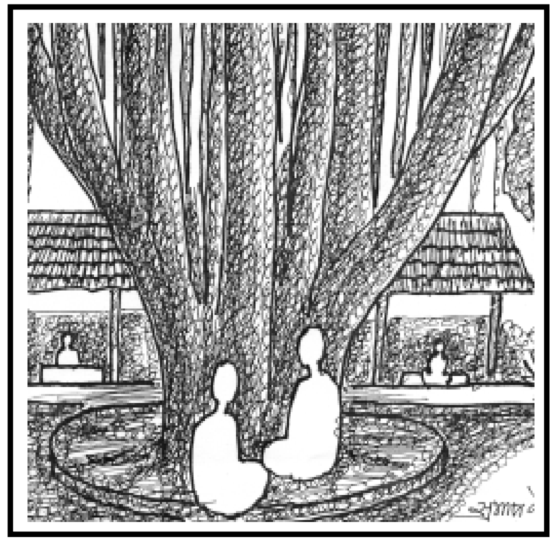

भरसक मुस्कुराते हुए कहा —

''ना बेटी तब का समय और था. तीन बच्चों का ध्यान रखते और घर संभालते समय का पता ही कहां चलता था. तब सारे काम ख़ुद ही करने होते थे. माईयां रखने का चलन नहीं न था. कपड़े भी ख़ुद ही धोने होते थे. फिर तुम्हारे ससुर की तनख़्वाह भी इतनी नहीं थी. बस बहुरिया जो सबसे ख़ास बात थी तो वो बस संतोष था.''

स्नेह से वह मेरे लिए इस 'बहुरिया' संबोधन का ही प्रयोग करती हैं.

''तेरे ससुर का स्वभाव आज की तरह यूं ही था. किसी को भी धमकाते, डपटते नहीं थे. जितना बन पड़ता था मेरी मदद कर दिया करते थे. हमेशा से ऐसे ही भले थे.''

''वह अपने बेटों को भी सिखा देते कुछ ये वाले गुण, क्या बिगड़ जाता.''

दबी जुबान में कुछ जुमले मेरे मुंह से फिसल जाते हैं. वह मेरी तरफ़ जिस भाव से देखती हैं उससे मैं समझ जाती हूं कि शुक्र है उनके कानों तक मेरे ये उलाहने नहीं पहुंचे.

''अब तो क्या ज़िंदगी रह गयी है. औरत-आदमी दोनों नौकरी करते हैं. बच्चे कहां कैसे पल रहे हैं किसी को पता ही नहीं चलता. देर शाम दोनों थके-हारे घर पहुंचते हैं. फिर रिश्ते की ज़िम्मेदारियां क्या निभा सकेंगे. वहीं से मनमुटाव शुरू हो जाते हैं. अच्छा किया बेटी तूने जो नौकरी नहीं की.''

बहुत ही अच्छा किया मैंने अम्मा, भीतर तक चिढ़ जाती हूं. यही बात इनका बेटा कहता है. जब भी मैं विराज से अपनी व्यस्तता का जिक्र करती हूं तो वह झट से कह देते हैं.

''देख लिया न कितना काम होता है घर-परिवार में. ये सब तुम नहीं संभालोगी तो कौन संभालेगा? अब अम्मा से तो इस उम्र में करवाओगी नहीं. बहुत किया है उन्होंने बाबूजी के लिए, इस घर के लिए, हमारे लिए.''

मैं विराज से पूछना चाहती थी — उन्होंने अपने लिए क्या किया? कितना और कब किया? ....औरत अपने लिए कब करती है? कब ख़ुद के लिए जीती है ? परंतु जानती हूं इस सवाल का जवाब कभी किसी के पास नहीं होता. ख़ुद औरत के पास भी नहीं. पिछले महीने इसी घर में जब दशहरे पर सारा परिवार इकट्ठा हुआ था तब मैंने बड़ी ननद से पूछा था.

''दीदी आपके अम्मा और बाबूजी ने अपने बेटों को अपने संस्कार देकर ख़ुद क्यों नहीं पाला? अपने बच्चे पालने के लिए दूसरों को क्यों दे दिये?''

जेठानी जी और ननद मेरी इस बात पर छिपे हुए तंज को समझ कर ज़ोर से हंसीं तो दोनों भाइयों ने हमें कुछ इस तरह से घूरा मानो हम इनके विरुद्ध कोई बड़ी साजिश कर रहे हों. मुझे लगता है इन पतियों को मालूम तो सब होता है, कि वे कहां पर गड़बड़ करते हैं. बस मानना नहीं हुआ.

रोज़ का लगभग यही रूटीन होता है. शाम अभी ठीक से विदा भी नहीं होती और रात की तैयारियां शुरू हो जातीं हैं. सात साढ़े सात बजे तक विराज भी आ जाते हैं. फिर चाय, सूप पीते, रात का खाना खाते रोज़ ही दस साढ़े दस बजना मामूली बात होती है. जब मैं अगले दिन की तैयारी करने लगती हूं तब बाक़ी सभी लोग या तो टी. वी. के प्रोग्राम पर टिप्पणी कर रहे होते हैं या शानू से लाड़ मनुहार करते हैं. अगले दिन कौन क्या-क्या करेंगे वह सभी तय करते हैं. मेरा इन सब में कोई योगदान नहीं होता है.

अम्मा बाबूजी कब सत्संग में जायेंगे, कब अस्पताल, कब बड़े भाईसाब के पास, कब बेटी के घर. शादी-ब्याह और संस्कारों में जाना, उनके आराम का, टहलने का, पूजा का सब विराज तय करवा देते हैं. मेरे घर कब कौन खाने पर आयेगा, और कब हम कहीं खाने पर जायेंगे. इसके बारे में मुझे बस बता दिया जाता है. शानू के स्कूल का देखना और उसे स्विमिंग और जूडो कराटे की क्लॉस ले जाना ये सब मेरे हिस्से में आता है. अम्मा बाबूजी को सब जगह ले जाना भी अक्सर मेरी ज़िम्मेदारी होती है. विराज ऑफ़िस के ज़िम्मेदार पद पर हैं इसलिए वक़्त निकालना और छुट्टी लेना उनके लिए कभी आसान नहीं होता. फिर मैं हूं ही. मुझे घर पर काम ही क्या होता है. दिन भर हम औरतें घर पर बैठ कर सास-बहू और साजिशों वाले टी. वी. सीरियल देखती रहती हैं. ऐसा सभी का मानना है.

मेरे पास इसके अलावा कुछ और काम हैं भी नहीं. घर गृहस्थी के काम, काम की श्रेणी में जो नहीं आते. सबके लापरवाही से रखे सामान को ढूंढ़ कर उनके हाथों में पकड़ाना. जैसे कि विराज के दूर का और बाबूजी के पास का चश्मा, टी. वी. का रिमोट, पानी का ग्लास, खाना, चाय और सुबह का अख़बार आदि. सब एक सुगृहणी के काम हैं.

''घर-परिवार संभालना तो कोई विराज की बहू से सीखे.''

ये जुमला मेरी रिश्ते की ताई, चाची सासों का अपनी बहुओं को ताना मारने का नायाब हथियार है. मुझे घर-रिश्तेदारी से यही तमगा मिला हुआ है... इसलिए इसे क़ायम रखते हुए इसके अनुसार काम करना मेरा फर्ज है. इन सब के साथ ही आजकल अम्मा को एक नया फितूर सवार हो गया है. अक्सर अपनी भोली शक्ल की आड़ में पूछ देती हैं.

''बहुरिया अपना ध्यान रखा कर. सुन तो, दिन चढ़े हैं क्या ? अब शानू छह साल का हो गया है. वक़्त रहते एक दूसरा बच्चा भी सोच लो बेटा. दो बालक ठीक रहते हैं. एक-दूसरे का साथ बना रहता है.''

मालूम नहीं यह दुनिया इतनी तेज़ी से घूमती है या मैं ही घूमती हूं या फिर मेरा सिर घूमता है. कई बार खिन्न होकर विराज से कह चुकी हूं.

''विराज वक़्त मिले तो मेरा भी तो टाइम टेबल बना दिया करो. और हां उसमें मैंने टांगें कब सीधी करनी हैं, कमर को कब आराम देना है वो ज़रा बड़े अक्षरों में लिखना प्लीज़.''

पता नहीं कब बनेगा मेरा टाइम टेबल. औरत का टाइम-टेबल औरत ख़ुद भी नहीं बना सकती, क्योंकि हम अपने हिसाब से जीते ही कब हैं. हमें हमेशा दूसरों की

लघुकथा

मां केवल मां होती है

✍ लक्ष्मी रुपल

प्रसव के समय लापरवाही के कारण महिला के दो बच्चों की जान पहले जा चुकी थी. अतः अब तीसरे बच्चे के समय विशेष सावधानी रखी गयी. प्रसव का समय नज़दीक आने पर पत्नी को एक बैलगाड़ी में लिटा कर उसका पति गांव से शहर के सरकारी अस्पताल में ले आया. एक घंटे से भी अधिक समय तक बैलगाड़ी में हिचकोले खाकर अस्पताल पहुंचकर महिला बड़ी कमज़ोर और निस्तेज़ हो गयी. उसे अस्पताल में भर्ती करके पति कुछ आवश्यक सामान ख़रीदने के लिए शहर के बाज़ार चला गया. इधर महिला ने शिशु को जन्म दे दिया. कुछ समय के बाद बच्चा बुरी तरह रोने लगा. उसका रोना सुनकर नर्स उसे कई बार देखने आयी और यह कह कर चली गयी कि बच्चा बहुत भूखा है, जल्दी से उसके लिए दूध की व्यवस्था करो, पर व्यवस्था करता कौन? महिला के साथ कोई दूसरा व्यक्ति आया नहीं था. उसका पति अभी बाज़ार से लौटा नहीं था और महिला की छाती में भी अभी दूध नहीं आया था. ऐसे में वह करे तो क्या करे. वह सर्वथा विवश, असहाय, इधर-उधर देखती रही. बच्चा उसी तरह रोता रहा.

उसी कमरे में काम कर रही एक सफ़ाई कर्मी से बच्चे का इस प्रकार रोना देखा नहीं गया. उसे लगा कि बच्चा यदि और इसी प्रकार रोता रहा तो कुछ ही देर में दम तोड़ देगा. उससे रहा नहीं गया. उसने बांस में बंधी अपनी झाडू दीवार के सहारे टिकायी और महिला के पास आकर कहा, 'बच्चा बहुत भूख़ा है, बड़ी देर से रो रहा है. आप यदि बुरा न मानें तो मैं इसे अपना दूध पिला दूं? मेरा भी तीन महीने का बेटा है.' महिला ने कोई उत्तर नहीं दिया और शिशु को चुपचाप उसके हाथों में दे दिया. दूध पीकर, बच्चा थक कर सो गया. उसी समय कमरे से गुज़रती हुई नर्स ने अपनी साथिन से कहा, 'देख ! मां केवल मां होती है. उसकी कोई जात नहीं होती.'

✉ बी ३/२०१, निर्मल छाया टॉवर्स, वी. आई. पी. रोड,
जीरकपुर-१४०६०३, (मोहाली)पंजाब. मो. ९८७६२६९३६४.

सुविधाओं के हिसाब से जीने का संस्कार घुट्टी में जो मिलता है. औरत होने का आशीर्वाद जो उसके ख़ुद के लिए नहीं होता. सही कहा श्रीमती बसंत ने. औरतों का जन्म इन्हीं घर के कामों के लिए ही होता है.

ये दुनिया पागल है क्या ? या मैं पगला गयी हूं? या फिर जल्द ही पगलाने वाली हूं? कुछ तो होने वाला है. विराज से जब भी अपने टाइम टेबल की बात करती हूं तो वह भी यही कहते हैं.

''राधिका तुम पागल हो गयी हो क्या? तुम्हारे बलबूते पर हम सब निश्चिंत रहते हैं. तुम्हें कुछ हो गया तो हम सब तो परेशान हो जायेंगे. अपना ध्यान रखा करो भई. अरे तुम तो धुरी हो इस घर की.''

साथ ही वह अतिरिक्त प्यार की मोहर अपना चुंबन मेरे माथे पर जड़ देते हैं... मुझे वह सर्प दंश-सा लगता है. टीस से आंखें भर आती हैं. परंतु इतना करने मात्र से ही मुझे फिर से वही पागलपन का दौरा पड़ने लगता है. मैं दौड़-दौड़ कर सारे घर को सिर पर उठाने लगती हूं. सबको संभालने लगती हूं. सबकी ज़रूरतों का ध्यान रखने लगती हूं. सब कुछ व्यवस्थित करके उनकी जगहों पर जमाने लगती हूं. आख़िर हमारा जन्म इन्हीं कामों के लिए ही हुआ है.

✉ एम्बिशस मार्केटिंग
१/०४ (प्रथम तल), जनपथ-७८
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-११०००१
मो.९९५८३८१६०२
ई-मेलः adhikarime@gmail.com

कविता

इंच इंच माप मिला है

मधु प्रसाद

सपने सारे निर्वासित हैं
जाने किसका शाप मिला है.
ताल, छंद, लय, गान खो गये
पीड़ा का आलाप मिला है.
खेल निराला अंधियारों का
उजियारे पर देते पहरा.
सुर सरिता में आशाओं की
केवल सन्नाटा ही ठहरा.
शंकाओं का जाल फेंकता
ख़ुशियों का परिताप मिला है.
चालें ऐसी पुरवाई की
बेमौसम पतझर फिर आया.
लील गया है मधुर मास को
जाने किस डाकिन का साया.
कोमल अहसासों को केवल
मरुथल जैसा ताप मिला है.
छलता आया है आंखों को
नीलांबर छूने का सपना.
शून्य शून्य ही मिला शिखर पर
क्या कोई बन पाया अपना ?
बिंब, मिथक सब फीके लगते
बस केवल संताप मिला है.
अलंकरण करने को केवल
शब्दों की विष बुझी धार है.
अर्थहीन संदर्भ हो गये
व्यर्थ उड़ानों का प्रचार है.
और समय कर रहा समीक्षा
इंच इंच बस माप मिला है.

२९, गोकुलधाम सोसायटी, कलोल-महेसाणा, राजपथ, चांदखेडा, अहमदाबाद-३८२ ४२४. मो. ७९२३२९०८४९

निवेदन

रचनाकारों से

*"**कथाबिंब**" एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि **विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.***

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.
२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.
३. सामान्यत: प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.
४. आप ई-मेल से भी रचनाएं भेज सकते हैं. ई-मेल का पता है : kathabimb@yahoo.com. रचना की "डॉक" फ़ाइल के साथ "पीडीएफ" फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी किसी अन्य पत्रिका मे नहीं भेजी जायेगी.

कहानी

"अतृप्त मोक्ष"

✍ निरुपम

हताशा में उसने शहर छोड़ने का निर्णय ले लिया. उसे ख़ुद नहीं पता था कि उसे कहां जाना है. असमंजस की सी स्थिति में वह रेल्वे स्टेशन आ गया, सामने से ट्रेन जा रही थी. बिना कुछ विचार करे वह चलती ट्रेन के उस डिब्बे में चढ़ गया जो उसके सामने था. डिब्बा जैसे पूरा खाली था, नीले रंग की हल्की रोशनी में डूबी गहन नीरवता रहस्यमयी लग रही थी. पूरे डिब्बे में एक पवित्र सुगंध फैली थी. उसने पूरे डिब्बे में घूमकर देखा सिर्फ़ एक साध्वी बैठी थी. साध्वी के पास बैठने में उसे संकोच हुआ, वह आगे गया. उसे लगा जैसे साध्वी ने उसे बुलाया हो, आवाज़ के सम्मोहन में वह उसके पास चला गया.

साध्वी ने इशारा किया तो वह सामने की सीट पर बैठ गया. उसने पूरे दिन से कुछ नहीं खाया था. भूख और थकान से उसका तन मन निढाल हो गया था. प्यास से उसका गला सूख रहा था. उसे थकी हुई आंखों में साध्वी का चेहरा जल में हिलती तस्वीर की तरह दिखाई दे रहा था.

साध्वी ने कहा — "आराम से बैठो."

वह आश्वस्त होकर बैठ गया. साध्वी ने पानी के लिए पूछा तो उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया. साध्वी ने चांदी की एक बोतल निकाली जिसकी बनावट अजीब सी थी. बोतल लेते समय उसे ऐसा लगा जैसे वह मायावी कथा की नायिका से कोई पात्र ग्रहण कर रहा हो. उसने बिना बोतल को मुंह से लगाये ऊपर से पानी मुंह में डाला. पानी कंठ तक सीधे चला गया. उसे ठसका लगा, खांसी से उसका कमज़ोर शरीर कांप गया. साध्वी ने कहा — "इत्मिनान से पिओ." वह आहिस्ता-आहिस्ता एक-एक घूंट पानी एहतियात के साथ पीने लगा. पानी पीकर वह निस्पृह भाव से बैठ गया. साध्वी की ओर देखने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी. वह खिड़की से बाहर देखने लगा. उसे लगा कि खिड़की के बाहर के दृश्य पृथ्वी लोक के नहीं हैं. उसने नज़र चुराकर देखा तो साध्वी मुस्करा रही थी. साध्वी के चेहरे की दिव्य अलौकिकता में वह जैसे खो गया.

साध्वी ने पूछा — "कुछ खाओगे?"

उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया. साध्वी ने इस बार नक्काशी युक्त प्लेट निकाली जो स्वर्ण की थी. साध्वी ने कटे हुए फल प्लेट में रखे और उसे प्लेट थमा दी. उसने फलों को पहचानने की कोशिश की पर शायद इस प्रकार के फल उसने पहले नहीं देखे थे. उसने बिना कुछ कहे फल खाना शुरू कर दिया. उसे फलों के स्वाद भी अजीब लगे पर जीभ को भा रहे थे. फल खाकर उसके शरीर में जैसे ऊर्जा लौट आयी थी. उसने प्लेट साध्वी को वापस करते हुए साध्वी को गौर से देखा. साध्वी के चेहरे को छोड़कर पूरा शरीर हल्के गेहुंए वस्त्र से ढका था. साध्वी के चेहरे का रंग ऐसा था जैसे दूध में किसी ने थोड़ी सी केसर डाल दी हो. साध्वी के स्याह बाल चेहरे पर हवा में इधर-उधर होते हुए सम्मोहन पैदा कर रहे थे. बिना श्रृंगार साध्वी के चेहरे पर इतनी असीम पवित्र सुंदरता थी वह सहम गया. उसे महसूस हुआ कि वह साध्वी को निरंतर देख रहा है तो उसने संकोच से अपनी नज़र हटा ली और खिड़की के बाहर देखने लगा.

"तुम शायद जीवन से भाग कर जा रहे हो." — यह वाक्य उसके कानों को ऐसा लगा जैसे साध्वी के मुख से ना निकला हो वरन् आकाश से कोई दैवीय स्वर उभरा हो.

वह चुप रहा. उसने उत्तर देने के बजाय पहले की तरह स्वीकृति में अपना सिर हिलाया और अगले प्रश्न की प्रतीक्षा में साध्वी की ओर देखने लगा. इस बार उसने साध्वी के चेहरे में एक सामान्य नारी का चेहरा तलाशने की कोशिश की. अचानक उसे लगा कि साध्वी के चेहरे की आध्यात्मिक क्रांति ने उसे चकाचौंध कर दिया है. उसे अपना इस प्रकार निहारना अश्लील लगा. उसने भयभीत होकर

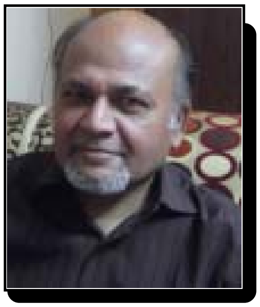

जन्म : २० सितंबर १९५८

: प्रकाशन :

कविताओं की तीन पुस्तिकाएं व चार संग्रह, विभिन्न पत्र तथा पत्रिकाओं में डेढ़ दर्जन कहानियां प्रकाशित. कहानी संग्रह ''कॉमन लव स्टोरी'' प्रकाशित.

: संप्रतिः

प्रधान न्यायाधीश

आंखें नीचे झुका लीं. साध्वी ने जैसे व्यंग्य किया — ''तुम इतनी सारी अतृप्त इच्छाएं लेकर जीवन से नहीं भाग सकते. इच्छाओं को त्यागना आसान नहीं है वे मृत्यु तक साथ रहती हैं. फल जैसे पक कर ही स्वयं डाली से टूटते हैं वैसे ही इच्छाएं संतृप्त होकर ही शरीर से विलग होती हैं. जीवन होते हुए इच्छाओं को त्यागना या इच्छाएं होते हुए जीवन को त्यागना आसान नहीं है. इच्छाएं रहते हुए तो जीवन को नहीं त्यागा जा सकता है बस मृत्यु का वरण किया जा सकता है. शायद अतृप्त जीवन को मृत्यु भी अंगीकार नहीं करती है.''

साध्वी उसे बात की दिशा देकर चुप हो गयी थी और उसके व्यक्त होने का इंतज़ार करने लगी. वह आत्मग्लानि से उबरने की प्रक्रिया में लगा था. उसने सोचा यदि वह आत्मपीड़ा को साध्वी को समर्पित कर दे तो शायद उसकी परेशानियों का कोई हल निकले. हल ना भी निकले पर शायद अपनी व्यथा व्यक्त कर वह कुछ देर इस पीड़ा से मुक्ति पा सके.

उसने हिम्मत जुटा कर कहा — ''मेरा जो भी है वह इतना संक्षिप्त नहीं है कि मैं एक-दो वाक्य में कह सकूं. मुझमें शायद संक्षिप्त अभिव्यक्ति की सामर्थ्य भी नहीं है. मुझे सुनाने में समय लगेगा.''

''हम अनंत यात्रा में हैं, समय की कोई सीमा नहीं है.'' - साध्वी का यह कथन उसे रहस्मयी लगा, उसकी जिज्ञासा शंकालु हो गयी. उसने आख़िरकार शंका व्यक्त कर ही दी - ''मैं नहीं समझ पा रहा हूं. आपकी मुझमें क्या रुचि है? मेरा जीवन अति सामान्य बोझिल पीड़ा की कथा है, कथा से अधिक व्यथा है. आपको यह सब सुनकर क्या मिलेगा ? मुझे सुनाकर क्या मिलेगा ?''

साध्वी ने सब कुछ बहुत सहजता से लिया और निश्चल शांत रहकर कहा — ''जब हम किसी को कुछ देते हैं तो वह वस्तु हमारे पास से दूसरे के पास चली जाती है पर अपनी पीड़ा शायद ही किसी प्रकार दूसरे को दी जा सकती है. इसके बाद भी जब हम अपनी पीड़ा किसी दूसरे को व्यक्त करते हैं तब हमें कुछ देर ऐसा लगता है कि हम पीड़ा से मुक्त हो गये हैं! हमने पीड़ा दूसरे को दे दी है. शायद तुम्हें कुछ देर तक पीड़ा से मुक्ति का आभास हो. तुम यह सोचकर भी राहत पा सकते हो कि मेरे पास शायद तुम्हारी पीड़ा के लिए कोई चमत्कारिक उपाय हो. जहां तक मेरा प्रश्न है मेरे लिए सुख-दुख दोनों समान हैं. मैं दोनों को समान रूप से ग्रहण करती हूं. सुख-दुख से मेरा अनुभव-संसार समृद्ध होता है.''

''आप पीड़ाओं का संग्रह करके क्या करती हैं?'' — इस बार उसकी जिज्ञासा शंकायुक्त नहीं आश्चर्ययुक्त थी.

''पर–पीड़ा धारण करने की शक्ति जितनी बढ़ती है मेरी साधना उतनी सघन होती है. मैं तुम्हारे अतीत को पीड़ा से मुक्त नहीं कर सकती पर मैं तुम्हें भविष्य की पीड़ा से मुक्त होने का मार्ग बता सकती हूं.''

उसे यह सुनकर निराशा ही हुई, उसे लगा था कि साध्वी किसी चमत्कार से उसे पीड़ा से निजात दिला देगी. साध्वी द्वारा मुक्ति मार्ग बताने वाली बात उसे गहरे अवसाद में ले आयी. उसके अंदर की जिज्ञासा अचानक निराश हो गयी. निराशा झुंझलाहट में बदल गयी. वह खीजकर बोला — ''मुक्ति का अंतिम मार्ग तो मैं भी जानता हूं. मृत्यु को तो मैं आसानी से प्राप्त कर सकता था. जंगल में भी जानवर को आभास हो जाता है कि वह जीवन से हार गया है तो वह अपने तरीक़े से सब त्याग कर मृत्यु को चुन लेता है. मैं तो इतने साधारण तौर पर मृत्यु के पाने के विचार से घबरा जाता हूं. मैं तो मृत्यु को भी भव्य और विरला बनाना चाहता हूं. आपका मृत्यु का मार्ग मुझे कोई विलक्षण मृत्यु दे सकता है, ऐसा मुझे नहीं

लगता.''

''मैंने कहा था कि बिना इच्छाएं त्यागे मृत्यु का मार्ग, मुक्ति का मार्ग नहीं बन सकता है. यदि अतृप्तता की स्थिति में मृत्यु को चुना जाता है तो यह चुनाव यातना भरा होगा. यह यातना इतनी होती है जितनी जीवन में कभी भोगी नहीं होती है. तुम शायद इसी यातना के भय से यह मार्ग आज तक नहीं चुन पाये हो क्योंकि तुम्हारे मन की इच्छाएं अभी भी अतृप्त हैं.''

उसे मृत्यु का विचार डराता रहा था. उसे जीवन की असफलता हमेशा कचोटती रही थी. जीवन की रिक्तता को वह भुला नहीं पाता था. इस रिक्तता को भरने की उसकी इच्छा जागृत थी. वह मृत्यु को एक करतब की तरह दिखा के जीवन को यादगार बनाना चाहता था. उसे लगा कि साध्वी सच ही तो कह रही थी — इतनी यातनाओं के बाद भी तो वह अतृप्त इच्छाओं के कारण मृत्यु को नहीं चुन सका था. उसे लगा कि साध्वी की दृष्टि पारदर्शी है वह उसके मन को भेद रही है. उसकी शंका और खीज दोनों कम हो रहे थे. उसे अब लगा कि साध्वी से विस्तार से खुलकर चर्चा करनी चाहिए.

''मैं सब समझती हूं और जानती हूं. पर मैं चाहती हूं कि तुम अपनी पीड़ाएं स्वयं मुझ तक पहुंचाओ जिससे तुम्हें लगे कि तुमने उन्हें मुझे दे दिया है और तुम पीड़ाओं से मुक्त हो गये हो. मुझे लगता है कि अगर तुम ऐसा कर पाओगे तो तुम्हें अपार शांति महसूस होगी. मैं चाहती हूं तुम्हें लगे कि मुक्ति का मार्ग तुमने ख़ुद चुना है तुम्हारी पसंद है वह, तुम उस पर अपनी मर्जी से गुज़रे हो. मैं नहीं चाहती कि तुम्हें ऐसा लगे कि इस मार्ग पर तुम्हें जबरन लाया गया है. जब कुछ अपरिहार्य है तो उसे ऐसे स्वीकारो जैसे तुमने उसका चुनाव किया हो तुम दिमाग़ को पहले शिथिल छोड़ दो क्योंकि कई बार हमारा पूर्वाग्रह हम तक सच को आने नहीं देता. तुम पहले इस मनोस्थिति में पहुंच जाओ जिसमें सभी रास्ते तुम तक पहुंच सकें. जब तुम नये सिरे से विचार करोगे तो हो सकता है तुम उसे चुन लो जिसे तुमने कभी पहले स्वीकार ही ना किया हो. मैं नहीं चाहती कि तुम्हें कभी ऐसा लगे कि कोई बात तुमने मेरे प्रभाव में मज़बूरी से स्वीकार की है. ऐसा करने पर तुम उसे आत्मसात नहीं कर पाओगे और दुखी रहोगे. दुख कभी मुक्ति नहीं देता.''

उसे लगा वह कुशल अभ्यस्त हाथों में गेंद की तरह ऊपर नीचे हो रहा है. उसकी अपनी कोई गति नहीं है वह शायद अपने साथ किये जा रहे करतब के कौतुक में है. वह समर्पण के भाव में आ रहा था. उसे लग रहा था कि बेहतर यह है कि वह अपने को इस उद्दात लहर के हवाले कर दे और प्रतीक्षा करे कि लहर उसे किनारे लाती है या जल समाधि में ले जाती है. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह कहां से बात शुरू करे.

उसकी चुप्पी को साध्वी ने तोड़ा — ''तुम्हें लगता है कि तुम्हें अकेलेपन का अभ्यास हो गया है. जब वास्तव में अकेलापन न हो तब भी तुम अपने अकेलेपन से नहीं निकल पाते हो.'' उसे लगा कि साध्वी ने उसे बात का एक सिरा दे दिया है.

''सच है बचपन से ही मुझे अकेलेपन का अभ्यास है. जब रात मैं मां के आंचल से चिपक कर सोना चाहता तो मेरा सौतेला पिता मुझे खींच कर कमरे से बाहर कर देता. मैं ज़िद करता तो मुझे मार पड़ती, मेरी मां बचाती तो उसे भी मार खानी पड़ती. पिता की वासना और मां की असहायता के बीच में, मैं अक्सर रात में अकेला हो जाता. दिन में माता-पिता काम पर चले जाते और मैं फिर अकेला हो जाता. अबोध आवेश में अकेलेपन से भाग निकला. ट्रेन में आवारा छोकरों के साथ मिल गया, उनके साथ चोरियों का भागीदार हो गया, अंत में एक दिन पकड़ा गया और मुझे बाल सुधार गृह में रखा गया. सुधार गृह में मुझे पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था, जिसके लालच में कुछ महिनों वहां रुका रहा. स्कूल जाते बच्चों को देखकर जो मेरी एक इच्छा जगती थी, पढ़-लिखकर वह इच्छा कुछ हद तक पूरी हुई. बहुत जल्दी मैं ऊब गया और वहां के अकेलेपन से भाग निकला. वहां से भागकर मैं एक अजनबी कस्बे के रेल्वे स्टेशन पहुंचा जहां रेल्वे कैंटीन पर चाय बेचने लगा. कैंटीन मालिक के लड़के ने उसी समय अख़बार की एजेन्सी ली उसने मुझे अख़बार बांटने पर लगा दिया. मुझे अख़बार बांटने के लिए एक साइकिल दिला दी और साइकिल पर मेरी यात्रा चल निकली. मुझे लगता शहर सुबह से मेरी प्रतीक्षा में है. यह ख़ुशी ज़्यादा दिन नहीं रही. अख़बार के पैसों पर से एक दिन मेरी पिटाई हो गयी और मैं नये पड़ाव की तलाश में चल पड़ा. कस्बे दर कस्बे अख़बार बेचे. अंत में एक कस्बे में मैंने अख़बार की अपनी एजेन्सी ले ली.

धीरे-धीरे छोटी-मोटी ठेकेदारी करते मैंने अपना व्यवसाय भी जमा लिया और एक छत भी बना ली. संघर्ष से उबरा तो मुझे लगा कि अकेलेपन ने मेरा साथ नहीं छोड़ा है. रात जब मैं सोने के लिए बिस्तर पर लेटता तो मुझे लगता कि मेरा सौतेला बाप मां के आंचल से खींच रहा है. मां के प्रति दया और ममता तथा पिता के प्रतिशोध का भाव मुझे अतीत की याद दिला देता था. असहायता के अलावा मेरे पास कुछ भी नहीं होता था, मुझे तो यह भी याद नहीं कि मैं किस गांव कस्बे से चला था, मुझे तो मां का चेहरा तक याद नहीं था. मैं बेबसी में अपने अकेलेपन से जूझता रहता. उसी समय सविता मेरे जीवन में आयी.''

सविता की सुखद स्मृतियां उसके चेहरे पर दमकने लगीं. लगातार बोलने से वह थक गया था. सुस्ताने के लिए वह चुप हो गया. उसे विश्राम के लिए अंतराल देने के मकसद से साध्वी ने कहा — ''स्मृतियां और संभावनाएं आदमी की धरोहर होती हैं इन्हें हमेशा बचाकर रखना चाहिए. जब तंगी हो तब भी इनको एहतियात से ख़र्च करना चाहिए. तुम अच्छी स्मृतियों को जितना बचाकर रख पाओगे और संभावनाओं को जितना ज़िंदा रख पाओगे तुम्हारी पीड़ा सहने की क्षमता उतनी ही मज़बूत होगी.''

वह तल्ख हो गया — ''संभावनाएं समाप्त हो जायें तो स्मृतियों की तासीर अपने आप ख़त्म हो जाती है. मैं सविता को याद नहीं करना चाहता. बीमारी की शुरुआत में जब मुझे ठीक होने की उम्मीद थी सब अच्छा लगता था. जीवन की संभावना समाप्त होते ही सब छूट गया है. मुझे फिर से अकेलेपन ने घेर लिया है. संघर्ष करने के लिए धन व दोस्त तो चुक ही गये थे, अब तो मन भी हार गया है.''

''मृत्यु से हार तो नियति है आज तक कोई नहीं जीता. तुम मृत्यु की सत्यता को स्वीकारते तो मन नहीं हारता. जीवन में जो कुछ बचा है उसमें मन लगाना ही जीवन है.''

उसे साध्वी का यह कथन बिल्कुल नहीं भाया. उसकी तल्खी और बढ़ गयी थी. ''मृत्यु को कौन झुठला सकता है. डॉक्टरों ने जब जवाब दे दिया तब ही मृत्यु का सच सामने आ गया था. मैं मृत्यु से कभी बेचैन नहीं हुआ. मैंने जीवन की सामान्यता को कभी स्वीकार नहीं किया था कुछ असाधारण करने का समय मेरे पास बचा नहीं था. मृत्यु को लेकर मेरे मन में लालच आ गया था.''

''मृत्यु को लेकर लालच?'' — साध्वी ने आश्चर्य से दोहराया.

''लालच शब्द सही है. मैंने सोचा मृत्यु को तमाशा बनाकर मैं अपनी साधारणता से ऊपर उठ जाऊंगा. लोग इस बहाने मुझे जानेंगे और याद करेंगे.''

साध्वी चुप रही. साध्वी उसके लिए ख़ामोशी की राह खुली रखना चाहती थी. साध्वी उसकी ओर निरंतर ऐसे देखती रही मानो उसे आगे बोलने के लिए प्रोत्साहित कर रही हो.

उसने फिर अतीत को समेटकर आगे का ताना बाना बनना शुरू कर दिया, ''मेरे पास इलाज़ के लिए पैसे ख़त्म हो गये थे. आय के स्रोत भी सूख गये थे. मैं मृत्यु के सच को बहुत पास से देख रहा था. मैंने मृत्यु को तमाशा बनाने के लिए इच्छा मृत्यु के लिए नेताओं, अधिकारियों, अख़बारों को पत्र लिखे. कहीं से कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली, बस एक दो पुराने स्थानीय परिचित अख़बार वालों ने छोटे से कॉलम में ख़बर बनाकर छाप दिया. मुझे निराशा हुई. मुझे लगा था कि मामला तूल पकड़ेगा पर कुछ भी नहीं हुआ और बात लोगों की विस्मृतियों के ठंडे बस्ते में चली गयी.

हताशा और ग़ुस्से में मैं डॉक्टर के पास चला गया. मैंने ग़ुस्से में कहा — ''मेरा इलाज़ करो या मुझे मृत्यु दे दो.'' डॉक्टर ने दो टूक जवाब दे दिया कि उसे मृत्यु देने का अधिकार नहीं है.

मेरा ग़ुस्सा बढ़ गया मैंने फिर कहा — ''आपकी कैसी व्यवसायिक नैतिकता है, ना आप मृत्यु दे सकते हैं ना जीवन.''

''डॉक्टर चिढ़ कर बोला कि मरने के बहुत से तरीक़े हैं. उसका अस्पताल केवल मरीज़ों से फ़ीस लेकर इलाज़ करता है.

मैं असहायता से भर गया. मैंने डॉक्टर से दीनता से कहा — ''मैं क्या करूं ?'' डॉक्टर मेरी दीनता से थोड़ा नम्र हुआ उसने कहा कि ईश्वर से प्रार्थना करो और इलाज़ के लिए सरकारी अस्पताल जाओ. धार्मिक कल्याणकारी संस्थाओं से मदद मांगो, वो तुम्हारी आर्थिक मदद कर सकते हैं.

मैं कुछ कहने की स्थिति में नहीं था. मैं जानता था कि मैं कुछ भी करूं मेरी मृत्यु अटल है. अब जो जद्दोजहद

बची थी वो मृत्यु का फ़ासला कम करने की है.

फिर भी मेरे मन की इच्छा जैसे ख़त्म होने का नाम नहीं ले रही थी. मैंने नया तमाशा खड़ा किया और मैं बैनर लगाकर कलेक्ट्रेट में धरने पर बैठ गया. पत्रकारों ने इस मृत्यु की ख़बर में पूरी रुचि ली. अख़बारों में फिर मेरा जिक्र आया. आख़िर मुख्यमंत्री ने मुझे इलाज़ के लिए कुछ पैसे भेजे. कलेक्टर चैक देने आये. फिर अख़बार में ख़बर छपी. मैं कुछ संतुष्ट था. एक, दो माह मेरा इलाज़ भी चल गया.

मैंने जब इन सब घटनाओं पर विचार किया तो लगा इस तरह मेरी मंशा पूरी नहीं हो रही थी. चंद ख़बरें मुझे यादगार नहीं बना सकतीं. फिर इन ख़बरों में मैं कहां होता हूं. इन ख़बरों से मेरी मौत होती है और मेरी मौत पर लोगों की उमड़ती दया होती है. आगे का रास्ता मुझे नहीं सूझ रहा था. मेरे मन में एक बार आत्महत्या का विचार भी आया. एक गुमनाम कायर मृत्यु की कल्पना से ही मैं सिहर गया. मैं तो अपनी मौत को अविस्मरणीय बनाना चाहता था. मेरे मन में ख्याल आया कि न्यायालय में गुहार की जाये तो शायद कुछ बात बने.

मैं वकील के पास पहुंच गया. वकील समझा कि कोई नया केस है उसने रुचि ली पर मामला सुनते ही उसने खिन्नता जाहिर कर दी. वकील ने सपाट शब्दों में कहा कि यहां कुछ नहीं हो सकता है आपको हाईकोर्ट जाना होगा.

मैंने वकील से पूछा कि ख़र्च कितना आयेगा? कामयाबी मिलने के कितने आसार हैं? वकील ने लगभग टालने वाले लहजे में बताया कि उम्मीद मत रखो. ख़र्च तो वकील पर निर्भर करेगा पर कम से कम बीस हज़ार रुपये तो खर्च होगा ही. उसने यह भी बताया कि यदि मानव अधिकारों के लिए लड़ने वाली कोई संस्था या कार्यकर्ता मिल जाये तो वे अपने नाम के लिए यह काम मुफ़्त कर सकते हैं.

मैं फिर शून्यता पर आ गया था. वकील के चेहरे पर अरुचि साफ़ दिख रही थी. मुझे लगा कि इस जगह मुझे दीनता से पेश आना चाहिए वर्ना वकील अब मुझे विदा करने की स्थिति में है. मेरा अनुभव था कि दीनता के प्रति लोगों की संवेदनाएं जगती हैं और वे भले बेमन से करें कुछ न कुछ मदद कर देते हैं. दीनता मुझे कभी भी स्वीकार नहीं थी, दीनता आत्मग्लानि का अनुभव कराती थी परंतु विवशता सब कुछ करा देती है. मैंने दयनीय मुद्रा में कहा कि आप मेरी कुछ मदद करें, मुझे कुछ मार्गदर्शन दें.

विनय का असर हुआ. वकील ने थोड़ी रुचि लेते हुए बताया कि मरने के लिए क़ानून की इज़ाजत की ज़रूरत ही नहीं है. जो मर गया उसका क़ानून भला क्या कर लेगा. एक बात याद रखना कि मरने की कोशिश में पकड़े मत जाना नहीं तो मुक़दमा चलेगा.

''क़ानून आख़िर अनुमति क्यों नहीं देगा?'' मैंने बलपूर्वक पूछा. वकील ने बलात संयम बरतते हुए व्यक्त किया कि उसके लिए क्लाइन्ट बैठे हुए हैं उसे बहुत सा काम निपटाना है, अगर आपको सब जानना है तो आप स्वयं किताबों में पढ़ लें, जूनियर आपको सब बता देगा. इतना बताकर बिना मुझे कुछ कहने का अवसर दिये वकील चला गया.

तभी एक अन्य जूनियर वकील आ गया उसने मुझे सूचना दी कि सीनियर ने भेजा है. वह मुझे लायब्रेरी में ले गया. थोड़ी देर बाद उसने चार-पांच मोटी-मोटी किताबें मेरे सामने रख दीं. मैंने कहा — ''इतनी किताबें तो मैं जन्म भर नहीं पढ़ सकता.'' उसने कहा — ''अरे नहीं, बस कुछ पन्ने पढ़ने हैं, मैंने उन पर फ़्लैग लगा दिये हैं.''

मैंने किताबों को देखा. वे सब अंग्रेज़ी में थीं. मैं केवल इतना समझ पाया कि ये सुप्रीम कोर्ट, हाईकोर्ट के निर्णयों से संबंधित किताबें हैं. मैंने अपनी दुविधा व्यक्त कर दी कि मैं अंग्रेजी पढ़ना नहीं जानता.

मुझे लगा वह थोड़ा सा नाराज हुआ पर न जाने क्यों वह नाराजगी व्यक्त नहीं कर रहा था. उसने कहा कि क़ानूनी भाषा आपकी समझ में नहीं आयेगी. जो मुख्य-मुख्य बातें हैं, वह आपको आपके तरीक़े से बता देता हूं. मैं मान गया. उसने पंद्रह-बीस मिनट जो बताया उससे मेरी समझ में यही आया कि भारतीय संविधान सबको जीने का अधिकार देता है, मरने का अधिकार किसी को नहीं देता है. क़ानून की मान्यता है कि मृत्यु का अधिकार केवल ईश्वर को है क्योंकि ईश्वर ने ही मनुष्य को बनाया है. मृत्युदंड का भी क़ानून है पर मृत्युदंड यदा-कदा खास मामलों में ही दिया जाता है. हर व्यक्ति राज्य की संपदा है. क़ानून का काम राज्य की भलाई करना है तब क़ानून किसी को मृत्यु की

अनुमति कैसे दे सकता है ?

मुझे मोटे तौर पर यह समझ में आ गया कि दया बतौर भी मृत्यु की इज़ाजत मुझे कोर्ट से नहीं मिलेगी. मैंने उसे धन्यवाद दिया और बाहर आ गया. ऑफ़िस में वकील अपने क्लाइन्ट के साथ व्यस्त था, मैंने उसे नमस्कार किया.

वकील ने कहा — ''आपको उत्तर मिला?''

''आप सच कह रहे थे कि क़ानून से इज़ाजत लेने की क्या ज़रूरत है. मर जाओ फिर कहां का क़ानून?''

''बस मरते समय पकड़े मत जाना,'' कहकर वकील हंसा.

मैं अभिवादन करते हुए बाहर आ गया.

मेरा एक मिशन असफल हो गया था. मैं अब भी निराश नहीं था मेरे मन में मृत्यु का तमाशा बनाने की ज़िद आ गयी थी मैंने नयी बातों पर विचार किया. मैंने सोचा क्यों न किसी बड़े आदमी की हत्या कर मैं सुर्खियों में आ जाऊं. बहुत जल्दी मेरी समझ में आ गया कि हत्या करने के लिए मेरे पास ना साधन है, ना रास्ता और साथ ही हत्या करने का साहस भी मेरे पास नहीं है. यह युक्ति भी बिना अमल में लाये मैंने त्याग दी. मैं फिर रिक्तता से भयभीत हो गया. अनजाने यों ही जाकर बग़ीचे में बैठा था तभी मुझे सविता दिखाई दी. वह अपने पति के साथ थी. मैंने अपने को उससे बचा लिया.

''तुम्हें सविता के खोने का अहसास हुआ?''

''मैंने सविता को कभी पाया ही नहीं था फिर भी उसके खोने के अहसास से मैं बच नहीं सका.''

''यही फलसफा तुम्हें समझना है — जिसे हम पा लेते हैं, उसके खोने का अहसास होता है. जिसे हम नहीं पाते उसके ना पाने का अहसास होता है. यदि इच्छा है, लगाव है तो दु:ख तो होगा ही. तुम सविता का ना ज़िस्म हासिल कर सके ना मन इसलिए तुम्हें खोने का दोहरा अहसास हुआ होगा.''

साध्वी का दोहरा शब्द उसे चुभा पर वह तल्ख नहीं हुआ उसने सहजता से कहा — ''जीवन की अतृप्त इच्छाएं आदमी को कुंठित कर देती हैं वह मृत्यु का आसानी से वरण नहीं कर सकता. मेरी मृत्यु बहुत क़रीब और सुनिश्चित है अंत: मैं अपनी कुंठाओं को मृत्यु का तमाशा बनाकर दबाना चाहता हूं.''

''तुम मृत्यु को भुनाकर जीवन की रिक्तता को भरना चाहते हो. मृत्यु के बाद का यश तुम्हारे लिए बेमानी होगा. जीवन की उपलब्धियों को आदमी जीवन में जी सकता है. मृत्यु की उपलब्धियों को जीने का मौक़ा आदमी के पास नहीं होता. फिर तुम मृत्यु से यश पाकर क्या करोगे?'' थोड़ा ठहर कर उसने कहा, ''तुमने कभी सोचा है कि तुम मृत शरीर से भी अपने को ज़िंदा रख सकते हो, तुम अगर जीवन में देह दान कर देते तो तुम्हें एक तसल्ली मिलती कि तुम्हारे शरीर के अंग किसी का जीवन बनकर ज़िंदा रहेंगे.''

''मैं यह भी कर चुका हूं मैं बताना भूल गया था. मैं रेडक्रास ऑफ़िस में देहदान की लिखित घोषणा दे आया हूं. मेरी आवभगत हुई थी. मेरा नाम देहदान की घोषणा करने वाले हज़ारों लोगों की सूची में लिखा गया. मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी. मुझे पहली बार जीवन को लेकर कुछ संतुष्टि मिली थी. पर मैं एक दुविधा लेकर लौटा था. मुझे लगा कि मेरा कोई नहीं है, मेरे मरने के बाद देहदान के लिए सूचना कौन देगा. मुझे कभी-कभी लगता है कि मेरा देहदान व्यर्थ जायेगा, यह सोचकर मुझे तकलीफ़ होती है.''

साध्वी ने उसकी ओर प्रशंसा भरी नज़रों से देखा. उसे लगा कि इस बिंदु पर लाकर साध्वी उसे संतुष्ट कर देना चाहती है. उसे अंदर तक शीतलता महसूस हो रही थी परंतु वह संतुष्ट नहीं था. उसके मन की बात अधूरी रह गयी थी. उसने फिर बात शुरू की — ''आपको लगता है कि मैं आपसे सहमत हो गया हूं. आप नहीं समझेंगी मेरे जीवन में ना तो कोई उपलब्धि बची है, ना जीवन बचा है. मृत्यु के बाद मृत्यु के यादगार होने को मैं नहीं जी पाऊंगा पर शेष जीवन इन यादगार पलों की संभावना में बिताना मुझे अच्छा लग रहा है.''

साध्वी तर्कों को स्थगित करना चाहती थी. साध्वी ने आंखें मूंद लीं. साध्वी के चेहरे पर ओजमयी आभा स्पष्ट उजागर हो रही थी. शांत मुद्रा में पवित्र दिव्यता और निखर आयी थी. वह मंत्रमुग्ध सा देखता रहा, तभी साध्वी के ओठों पर अचानक हुए कंपन से शब्दों का एक झरना सा तरंगित हुआ — ''मृत्यु मोक्ष का मार्ग है. शांत अलौकिकता का द्वार है. अनंत जिसे अंतत: पा ही लेना है, उसे पाने के लिए हम इच्छा शक्ति का सहारा नहीं लेते

हैं. जब हमें मालूम हो जाता है कि मृत्यु हमें मिलने वाली है तब हम उससे दूर भागने का असफल प्रयास करते हैं. हम मृत्यु को कलात्मकता के साथ स्वीकार नहीं करते हैं. हम जीवन की वेदनाओं को मृत्यु की वेदना बताकर मृत्यु को स्वीकार करते हैं. यदि जीवन का मोह मृत्यु के लिए हो जाये तो शायद हमें जीवन में एक अलौकिक अनुभव होगा. हमें कभी जीवन जीने का भय नहीं सतायेगा. तब हम शायद जीवन को ना तो रिक्त महसूस करेंगे ना मृत्यु का तमाशा बनाकर उस रिक्तता को भरना चाहेंगे. मृत्यु पाकर जीवन सफल होगा, यही विचार जीवन को संतुष्ट कर देगा. तुम मृत्यु के नाम पर तमाशों की कामयाबी की संभावनाओं में जीकर कोई होशियारी नहीं कर रहे हो वरन् जीवन के कष्ट बढ़ा रहे हो. तुम शायद एक अतृप्त जीवन से अतृप्त मृत्यु की ओर बढ़ रहे हो.''

वह अब भी सहमत नहीं था. उसकी अतृप्तता और जीवंत हो गयी थी. उसने कहा — ''आपका तर्क मुझे बहला सकता है मेरी अतृप्तता को तृप्त नहीं कर सकता है.''

''नहीं, ऐसा नहीं है'' — साध्वी ने दृढ़ता से प्रतिरोध किया — ''जैसा मैं पहले कह चुकी हूं तुम अपनी इच्छाओं के लिए काल्पनिक संभावनाओं के मार्ग बनाते रहते हो और तुम्हारी अतृप्तता बढ़ती रहती है. तुम जिसे भी चाहते हो तुम उसे सत्य कहते हो. यदि तुम सहजता से सत्य को स्वीकार करो तो तुम पाओगे तुम तृप्त नहीं संतृप्त हो.''

''जीवन के कष्ट दूर करने के लिए ना मेरे पास पैसे हैं ना उम्मीद, ना इच्छा शक्ति. मृत्यु की प्रतीक्षा करना या मृत्यु का स्वेच्छया वरण करना मेरी मज़बूरी है.

मुझे लगता है कष्टदायक जीवन के साथ मृत्यु की प्रतीक्षा करने के अलावा मेरे पास कोई रास्ता नहीं है. आत्महत्या कायरता है और मैं कायरों की तरह मरना नहीं चाहता. मृत्यु को स्वेच्छा से चुनने की अनुमति ना क़ानून देता है ना धर्म. मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूं? आपसे बात करके मुझे कुछ तसल्ली तो मिली है पर कोई हल मिला हो ऐसा नहीं लगता.''

''तुम जब अपनी इच्छाओं के दायरे में हल खोजोगे, नहीं मिलेगा. आत्मा से मृत्यु का वरण करो. सांसारिक जीवन के अंतिम पड़ाव में भी जीवन का संयम मिल जाये और संयम के साथ समाधि मिल जाये तो समझो हल मिल गया.''

''मैं मृत्यु को स्वीकार करने लगा हूं. मेरा जीवन का मोह फिर भी नहीं छूटा है. जीवन की इच्छा मर गयी है परंतु मृत्यु का संकल्प नहीं ले पाया हूं. मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि अतृप्त जीवन को मोक्ष कैसे मिल सकता है.''

''सच है, जीवन की अतृप्तता के साथ मृत्यु मोक्ष का साधन नहीं बन सकती. आदमी की मज़बूरी होती है कि वह इच्छाओं की पूर्ति के लिए कभी भी पीछे नहीं लौट सकता. अंत में एक ही रास्ता रह जाता है कि आदमी इच्छाएं त्याग दे. मृत्यु का वरण स्वविवेक से जीवन के उद्देश्य के लिए करना ही मोक्ष है. जीवन को त्यागना मृत्यु का वरण नहीं है. तुम शायद इच्छाएं नहीं त्याग पा रहे हो अत: जीवन भी नहीं त्याग पा रहे हो. तुम अपनी अतृप्त इच्छा मेरे सामने रखो, शायद तुम्हें लगे कि तुमने इच्छा को मुझे दे दिया है और इच्छा तुम्हारे पास नहीं रह गयी है, इस स्थिति में तुम्हारा जीवन और मृत्यु दोनों संतुष्टि पा सकते हैं.''

''धन थोड़ा बहुत मैंने कमाया और ख़र्च भी किया.

ग़ज़ल

नरहरि 'अमरोहवी'

रूठे हुयों से बात करूं सोच रहा हूं,
ख़ुश उनको मैं दिन रात करूं सोच रहा हूं।
पत्थर लिये जो हाथ मुझे ढूंढ़ रहे हैं,
उनसे भी मुलाक़ात करूं सोच रहा हूं।
पहली सी महक जायें जो इस पल में फ़िज़ाएं,
पैदा वही हालात करूं सोच रहा हूं।
चुप रहना बना अब तो उदासी का सबब है,
चुप तोड़ने की बात करूं सोच रहा हूं।
कुछ लोग नज़र आते हैं मासूम यहां तो,
कुछ उनसे सवालात करूं सोच रहा हूं।

ऑर्किड-एच-८०३,
वैली ऑफ फ्लॉवर्स, ठाकुर विलेज़,
कांदिवली (पूर्व), मुंबई-४००१०१.
मो. : ९३२२१२५४१६

विद्या जितनी भी पायी, उसका उपयोग किया. मैंने सुखों को स्पर्श किया और महसूस भी. मैंने सौंदर्य को देखा और आनंद लिया. मैंने स्वाद लिये और अनुभूति की. इतना सब करने के बाद मैं नहीं कह सकता सब पूर्ण था. पूर्णता जीवन में शायद होती ही नहीं. जहां तक अतृप्तता का प्रश्न है, जैसा आपने मुझ पर व्यंग्य भी किया कि मैंने अपनी इकलौती दोस्त को तन-मन दोनों से नहीं पाया और इसलिए मेरे उसे ना पाने का अहसास दुगना है. फिलहाल तो मुझे यही अतृप्त अपूर्ण इच्छा याद आ रही है.'' वह चुप होकर साध्वी की ओर देखने लगा.

''तुम इच्छा मृत्यु को आत्महत्या की संज्ञा दे रहे हो जो ग़लत है. आत्महत्या हताशा में काम, क्रोध, राग, द्वेष और विकृत अवस्था में लिया गया कायरता पूर्ण निर्णय है. मृत्यु का वरण दृढ़ इच्छा शक्ति एवं आत्मबल से लिया गया निर्णय है जो मोक्ष का द्वार खोलता है. जीवन से ऊब कर किया गया निर्णय आत्महत्या है. मृत्यु के सच को स्वीकार करते हुए जीवन के अंतिम लक्ष्य को पाने के लिए मृत्यु का चुनाव एक आध्यात्मिक निर्णय है.

तुम यदि सविता का शरीर पा लेते तो क्या तुम्हारी इच्छा तृप्त हो जाती, यदि तुम ऐसा मानते हो तो यह सौ प्रतिशत ग़लत है. यदि तुम उसका शरीर पाते तो पाने खोने का सिलसिला बन जाता और जब यह श्रृंखला टूटती तो तुम पाते तुम अतृप्त हो.''

''जो भी होता, फिलहाल तो मैं इस अधूरेपन से भरा हूं.''

''क्या इससे उबरने के बाद तुम पूर्णता के भाव के साथ जीवन को त्याग सकते हो और मृत्यु को मोक्ष की तरह चुन सकते हो?''

''कहीं ऐसा ना हो कि इच्छा पूर्ति का सुख का अनुभव तुम्हें फिर अधूरेपन की तरफ़ ले जाये ?'' साध्वी ने प्रश्नवाचक नज़रों से उसकी ओर देखा.

''मैं नहीं कह सकता, बस मैं कोशिश कर सकता हूं.''

''कोशिश एक अच्छा शब्द है. यहीं से सारी शुरूआत होती है. तुम्हारे मन में यदि यह आया कि इस इच्छापूर्ति के बाद तुम विरक्ति के परमानंद की ओर जाने की कोशिश कर सकते हो तो यह अच्छा संकेत है.''

''मुझे नहीं लगता कि अब सविता को मैं पा सकता हूं. मुझे यह लगता है कि अतृप्तता मुझे असंतुष्ट जीवन के असंतुष्ट अंत तक ले जायेगी. आप इच्छाएं त्यागने की बात कहती हैं, और यह भी कहती हैं कि फल जब पक जाता है तब डाली से टूटता है. आपको लगता है कि मेरी अतृप्त इच्छाएं मुझसे पृथक होंगी. आप बौद्धिक रूप से मुझे सहमत कर चुप करा सकती हैं, मुझे तृप्त नहीं कर सकतीं.''

''क्यों?''

''मैं नहीं बता सकता क्योंकि मुझे नहीं मालूम कि इस मानसिक दशा में मैं क्या कह रहा हूं? क्या सोच रहा हूं ? क्या करना चाहता हूं? मैं तो आपके विलक्षण व्यक्तित्व के सामने हतप्रभ सा हो गया हूं.''

साध्वी सजग थी पूरे एहतियात के साथ उसने खुलकर कहा — ''तुम्हारी बात को मैं चेहरे से नहीं मन के अंदर से भी पढ़ सकती हूं तुम्हें ग़लतफहमी है कि मैं मूर्त देह हूं और मुझे इन्द्रियों से पाया जा सकता है. मेरा कोई रूप आकार नहीं है. तुम्हारी कल्पना शक्ति पर निर्भर करता है कि तुम मुझे किस शक्ल में ढाल लेते हो. तुम्हारी कल्पना शक्ति मुझे किसी भी रूप में पा सकती है. यदि तुम मुझे सविता के रूप में पाना चाहते हो तो तुम पा सकते हो. यदि इससे तुम मृत्यु का वरण कर मोक्ष पा सकते हो तो मेरे अमूर्त अस्तित्व को इससे क्या फ़र्क पड़ता है.'' उसे लगा कि उसे सम्मोहित कर लिया गया है. उसे लगा कि सामने सविता है. उसका बीमार शरीर उत्तेजना में कांपने लगा था. उसे लगा कि वह सविता की देह में समाकर विदेह हो गया था.

उसकी मूर्च्छा निरंतर गहरा रही थी.

उसे होश आया तो देखा वह ट्रेन की पटरी के किनारे पड़ा था चारों तरफ़ घना जंगल था. पटरी के दोनों सिरे घने जंगल में जाकर लुप्त हो गये थे. पटरी किस दिशा में जा रही थी किस दशा से आ रही थी कुछ समझ नहीं आ रहा था.

उसे दूर आकाश में चीलों व गिद्धों के झुंड मंडराते दिखायी देने लगे. उसे लगा कि एक जानवर बलात मृत्यु का वरण कर रहा है.

कुटुंब न्यायालय, टीकमगढ (म. प्र.)
संपर्क- ९४२५९९२७५१,
९६३०५३८१०१.

कहानी

धोखा

✍ धर्मेंद्र कुसुम

"साहबानो, मेहरबानो, क़दरदानो! आपको मेरा सलाम. शांत हो जाइए, चुप हो जाइए. और, गौर से सुनिए मेरी बात. ऐ बच्चा लोग, तुम लोग भी चुप हो जाओ, चोप्प...चोप्प. हां तो भाई सबसे पहले हिंदू भाई को राम-राम, प्रणाम और मुसलमान भाई को सलाम, आदाब. हां तो भाइयो! आप सुन रहे हैं न मेरी बात? थोड़ा और सटिए...सटिए, नज़दीक आ जाइए. अरे रे, ई बचवा तो बीचे में घुसल आ रहा है, अरे इधर नहीं उधर...उधर. कहा न हियां नहीं, हियां बैठोगे तो हम खेला कैसे दिखायेंगे? बीच में खेला दिखाने भर का जगह छोड़कर सटिए. ए भाई आगे वाला! बैठ जाइए... बैठ जाइए. आगे वाला बैठियेगा नहीं तो पीछे वाला खेला कैसे देखेगा? बैठिए...बैठिए...सब आगे वाला बैठ जाइए."

डमरू बजता है डिग-डिग, डिग-डिग, डिग-डिग, डिग-डिगा, डिग-डिगा ...डिग-डिगा...डिग-डिगा...डिगाक-डिगाक.

"हां तो बच्चों बजाओ तालियां, सब लोग बजाइए ताली... बजाइए... बजाइए, और जोर से."

तालियां बजने लगती हैं तड़-तड़, तड़-तड़, तड़-तड़.

"हां बजाते रहिए और जोर से, जम्हूरा तभी ख़ुश होगा. जम्हूरा ख़ुश होगा, तो बढ़िया खेल दिखायेगा. ऐसा खेला, जैसा खेला कि आपने पहले कभी देखा नहीं होगा."

डमरू एक बार फिर बजता है डिग-डिग, डिग-डिग, डिग-डिग, डिग-डिगा, डिग-डिगा ...डिग-डिगा...डिग-डिगा...डिगाक-डिगाक.

"ऐ भाई ऐ! औरत लोगन को भी देखने दीजिए. आप हुआं कहां औरतवन के बीच में घुसल जा रहे हैं भाई साहब? सब औरतवन अपना मां-बहन लोग हैं. अलग हटके खड़ा रहिए न, मां-बहन लोग को भी देखने दीजिए. हां तो बोल जम्हूरे, खेला दिखायेगा?"

"हां दिखायेगा उस्ताद."

"कौन खेला दिखायेगा?"

"जो आप बोलेगा उस्ताद!"

"तब ठीक है. हां तो भाइयों हो जाइए खेला देखने के लिए तैयार. और बजाइए ताली."

तड़-तड़, तड़-तड़. तालियों के बीच ही डमरू भी बजता है डिग-डिग, डिग-डिग, डिग-डिगा, डिगाक-डिगाक.

"ऐ बचवा तुम नहिये मानेगा, ठहरो अभी हम तुम्हारा इंतजामे करते हैं. ऐसा जादू मारेंगे न कि तुम्हारी जेब का सब पैसवे ग़ायब हो जायेगा. हटो-हटो दूर हटो. हे लो इ खींच दिया लछमन रेखा. इसके भीतर जो आयेगा, उ छटपटा कर मर जायेगा. भाइयो कोय इस रेखा के भीतर पैर नहीं देना. मर जाइयेगा तो हम कोनो भगवान नहीं हैं कि फिर जिला देंगे. हां अब ठीक है. जम्हूरे खेला दिखाने के लिए तैयार है?"

"तैयार है उस्ताद."

"हां तो भाइयो. आज हम आपको दिखायेंगे एक ऐसा खेल, जिससे आप रातों-रात मालामाल हो सकते हैं. और मालामाल होने के बाद कार, गाड़ी-बंगला, बम्बै की हीरोइन, कलकत्ते की बाई, जो चाहिए, सब मिलेगा. और, वह है रुपया दुगुना करने का खेल. भाइयो, यहां कोय पुलिस वाला नहीं है न?"

"नहीं," भीड़ का समवेत प्रत्युत्तर मिला.

"हां, तब ठीक है. और रुपया दुगुना करने के अलावा हम आपको दिखायेंगे सांप और बिज्झी (नेवला) का लड़ाई. और देखिए, इ है पंखराज. आ गया पंखराज, दिन का गेठिया, बात-कनकनी हो गया, हाथ में, पैर में, कमर में, वो छुड़ायेगा पंखराज, दोहायी मां लक्ष्मी छुड़ायेगा पंखराज, दर्द भाग-भाग-भाग. दोहाई मां कामरू-कमिच्छा. जय मां काली. और देखिए, इ है शिलाजीत पत्थर का पसीना. शिलाजीत खाकर ही कमज़ोर से कमज़ोर आदमी ने बड़े-बड़े जोधा को पछाड़ा है. और, इ है सांप का, भूत-प्रेत

१२ अप्रैल, १९५९; स्नातक (हिंदी प्रतिष्ठा)

: अब तक :

वर्ष १९८४ से क्रमशः 'आर्यावर्त', 'नवभारत टाइम्स', 'आज', 'दैनिक जागरण', 'पंजाब केसरी', 'नवबिहार', 'नई दुनिया', 'नेशनल दुनिया' आदि दैनिक के साथ कई साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक पत्रा-पत्रिकाओं से संबद्ध.

'परिणीता', 'केंचुल पहने लोग' और 'शाख से टूटे पत्ते' (कहानी संग्रह) प्रकाशित. 'प्रजा सुखी है' (कहानी संग्रह) प्रकाशनाधीन.

'दिनमान', 'सारिका', 'हंस', 'अवकाश', 'शेष', 'ज्योत्सना', 'वैचारिकी', 'गंगा', 'पहुंच', 'नर-नारी', 'मानस मराल', 'भागीरथी', 'वैचारिकी संकलन', 'पांचजन्य', 'अक्षर पर्व', 'किस्सा', 'अभिधा', 'अंगचंपा', 'दखल', 'प्रसंग', 'सृज्यमान', 'न्यूज ब्रेक', 'गणतंत्र- संवाद', 'अभिनव पथ', 'धर्ममेघ', 'विरासत', 'तह तक', 'मुहिम', 'समकालीन तापमान', 'सेवन डेज', 'समकालीन करंट', 'अभिव्यक्ति', 'उमा', 'प्रगति वार्ता', 'पीपुल वॉयस', 'हिन्दुस्तान' आदि पत्र-पत्रिकाओं में लेख, साक्षात्कार, कहानियां, कविताएं आदि प्रकाशित. 'अनावृता', 'कथा कोशी' आदि कथा संग्रहों में कहानियां संकलित.

आकाशवाणी भागलपुर एवं पूर्णिया से पचास से अधिक कहानियां प्रसारित.

'उत्तरांचल की कहानियां' (कहानी संग्रह) एवं 'पुष्पांजलि' (अनियतकालीन) तथा 'सीमांचल टाइम्स' (मासिक) का संपादन

: संप्रति :

स्वतंत्र लेखन.

का, डायन-जोगिन का जड़ी. और इ है मनोकामना पूरन करने वाली औंगठी. लेकिन, इ सब बाद में, जिसको ज़रूरत होगी, मांग लीजियेगा फिरी मिलेगा फिरी, कोय दाम नहीं. पहले खेल देखिए खेल.''

''हम इस जम्हूरे को अभी आपके सामने मार देंगे, सीना चीर देंगे इसका और कलेजा निकाल के बाहर कर दिखायेंगे आपको.''

''नहीं-नहीं, ऐसा खेला मत दिखाइए. मत दिखाइए. ऐसा खेला.'' भीड़ ने जोर से प्रतिरोध किया.

''शांत हो जाइए, शांत हो जाइए. हम कोनो सचमुच का इसको थोड़े मारेंगे. यह तो जादू का खेल है भाई. जादू है जादू. बंगाल का जादू. बहुत दिन अपने ओस्ताद का सेवा किया, पीछू-पीछू घूमा तब सिखाया ओस्ताद ने यह जादू. सचमुच का मारूंगा तो जेल जाना पड़ेगा, वहां चक्की पीसना होगा. यह तो हाथ का कमाल है. रुपैया दुगुना करने का खेला भी जादूए है. रुपैया दुगुना कर सकता तो गली-गली, शहर-शहर काहे घूमता बाबू? घरे में बैठकर हमहुं अमीर नहीं बन जाते. लोग रुपया दुगुना बनाने का लोभ देकर ठगता है. हम ठग नहीं हैं, जो आपसे झूठ बोलेंगे. ये जादू का खेला भी हम लोगों को जमा करने के लिए दिखाते हैं. लोग खेला देखने आते हैं, पसंद आता है तो चार आना, आठ आना, एक रुपैया, पांच रुपैया, दस रुपैया, जिसको जैसा बुझाता है, मेरे लिए, इस जम्हूरे के लिए, सांप और बिज्झी के लिए ख़ुशी से देते हैं. उसी से हमारा पेट भर जाता है. बाक़ी लोगन को, जिसको जैसा ज़रूरी होता है, कोई पंखराज लेता है कोई जड़ी-जंतर. हम इसका भी कोई दाम नहीं लेते, सिर्फ़ बनाने का चारज भर लेते हैं. लोगों का भला होता है तो दुबारा मिलने पर ख़ुशी से दान-दक्षिणा भी मिल जाता है. हां तो भाइयों अब देखिए खेल. बजाओ बच्चों ताली.''

बच्चे तालियां बजाने लगते हैं तड़-तड़, तड़-तड़. तालियों के साथ डमरू भी बजता है डिग-डिग, डिग-डिग, तड़-तड़-तड़-तड़. डिग-डिग, तड़-तड़.

भीड़ के साथ फूलो ने भी देखा खेला, बंगाल का जादू. जादूगर ने सचमुच ही जम्हूरे का सीना चीरकर कलेजा बाहर कर दिखाया और फिर उसे ज़िंदा भी कर दिया. सांप और बिज्झी की लड़ाई भी कम मजेदार नहीं थी. काफ़ी पैसा पड़ा. जड़ी-जंतर भी बिका. फूलो ने भी लिया पंखराज, शिलाजीत और मनोकामना सफल करने वाली अंगूठी.

कस्बे के साप्ताहिक हाट से पैदल चलकर वह गांव पहुंची तो शाम ढल चुकी थी और अंधेरा घिरने लगा था.

गांव की तंग गलियां पारकर अपने घर के निकट पहुंची तो देखा आंगन के सामने लगा बांस की फट्टी का दरवाज़ा बंद था, घर सूना-सूना, पति रामलाल नदारद. उसने मन ही मन अनुमान लगाया, वे ज़रूर नेताजी के साथ ही चुनाव प्रचार में घूम रहे होंगे.

तीन वर्ष पूर्व ब्याहकर आयी है फूलो इस गांव. तेरह साल की उम्र में ही शादी हो गयी थी, अब सोलह की है वह. रामलाल की उम्र है बाईस. तीन भाइयों में सबसे बड़ा. छोटे दोनों भाई पंजाब में मज़दूरी करते हैं, अभी उस दोनों की शादी नहीं हुई. मां-बाप काफ़ी पहले गुज़र चुके हैं. संपत्ति के नाम पर ज़मीन का एक छोटा-सा टुकड़ा है. और है यह डीह, जिस पर उसका झोपड़ीनुमा फूस का घर है. इसी ज़मीन और डीह के कारण रामलाल कहीं बाहर नहीं जा सकता. खेती से थोड़ी-बहुत फ़सल के अतिरिक्त पंजाब में रह रहे दोनों भाइयों द्वारा भेजे गये पैसों से ही गृहस्थी चल रही है. कामचोर नहीं है रामलाल, खेती के अलावे वह गांव में ही मज़दूरी पर काम भी कर लेता है. इससे भी थोड़ी-बहुत आय हो जाती है. गृहकार्य के साथ हाट-बाज़ार का काम फूलो संभालती है.

थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा होने और सामाजिक कार्यों में गहरी अभिरुचि के कारण गांव में रामलाल की गहरी पैठ है. इसके बावजूद उसे व्यर्थ कहीं घूमने-फिरने का शौक़ नहीं है. लेकिन, विधान सभा चुनाव सामने आ जाने की वजह से वह थोड़ा-थोड़ा राजनीति में सक्रिय हो गया है. वर्तमान विधायक से इलाक़े भर के लोग नाराज़ हैं. पड़ोस के गांव का ही एक नौजवान वर्तमान विधायक के विरोध में चुनाव मैदान में है. वह लोकप्रिय भी है, अच्छी-अच्छी बात बोलता है, बड़े-बड़े वादे करता है, कसमें भी खाता है. रोज़-रोज़ साथ घूमने से वह रामलाल को न केवल अच्छी तरह जानने लगा है, बल्कि उससे काफ़ी घुल-मिल भी गया है. वह जब उसकी पीठ पर हाथ रखकर बातें करता है तो रामलाल काफ़ी ख़ुश हो जाता है. ज़्यादा उम्र भी नहीं है उसकी. रामलाल से तीन-चार साल ही बड़ा होगा लेकिन ऐसे घुला-मिला रहता है, जैसे रामलाल की बराबरी का ही हो वह भी. इससे बहुत सारी आशाएं बंध गयी हैं रामलाल को उससे. रोज़ रात को रामलाल फूलो को बताता है यह सब. वह फूलो को यह भी बताता है कि पुराने वाले विधायक के हार जाने और नये वाले के जीत जाने पर उसके जीवन में क्या-क्या बदलाव आनेवाला है, कौन-कौन सी तरक्की होनी है, इस गांव के साथ-साथ संपूर्ण क्षेत्र में क्या-क्या होना है. इसी कारण इन दिनों रामलाल के साथ फूलो भी गदगद रहती है.

फूलो जब दीया-बत्ती जला चुकी तब एक घंटे बाद रामलाल भी घर पहुंचा. एक-दूसरे का हाल-चाल जानने-सुनने के बाद फूलो द्वारा पंखराज, शिलाजीत और अंगूठी लिये जाने की बात पर कुछ देर हल्की झड़प भी हुई दोनों के बीच. रामलाल ने फूलो को मूर्ख बताते हुए ठगाये जाने की बात कही तो फूलो ने उसे समझाया, ''पड़ोस के गांव वाले नेताजी की तरह ही सच्ची-सच्ची बात बोलता था वह जादूगर भी. इसी नेताजी की तरह ही दुआ-सलाम, पास आने का आग्रह कर रहा था वह भी. उदारता और निस्वार्थ भाव से जादूगर ने मुफ़्त में दी है दवाई, अंगूठी. सिर्फ़ बनाने का ख़र्चा लिया है. तब कैसे हुआ वह ठग और कैसे ठगी गयी वह.'' रामलाल उसके भोलेपन पर हंसा और कड़ुवाहट भुला दी. पति को संतुष्ट और प्रसन्न देखकर फूलो भी निश्चिंत और ख़ुश हो गयी. दोनों ने साथ-साथ रात्रिभोजन किया और रातभर अपने-अपने मनमाफ़िक सुनहले सपने बुनते रहे.

कुछ दिन बाद चुनाव हुआ. क्षेत्र का लोकप्रिय और रामलाल का चहेता नेता चुनाव जीत गया. उसे फूलमालाओं से लाद दिया गया. रामलाल ने भी फूलो के हाथों जतन से गूंथी गयी गेंदे के फूल की माला नेता को पहनाने की कोशिश की लेकिन अत्यधिक भीड़ के कारण यह संभव नहीं हो पाया. हालांकि, इसके बावजूद उसे कोई दुख न हुआ. वह ख़ुश था कि उसके चहेते नेता ने ही चुनाव जीता है, इसलिए अब तो गांव के साथ-साथ उसके भी दिन बहुरेंगे ही. विजय जुलूस को संबोधित करते हुए नवनिर्वाचित विधायक ने कहा कि राजधानी जाकर शपथ ग्रहण करने के बाद वह जल्द ही क्षेत्र लौटेगा और प्राथमिकता के आधार पर एक-एक कर सभी समस्याओं का निबटारा करेगा. विजय जुलूस गुज़र जाने के बाद भी देर तक जयघोष रामलाल के कानों में गूंजता रहा था. उस दिन उसके साथ-साथ फूलो भी काफ़ी उमगी-उमतायी थी.

काफ़ी दिन बीत गये लेकिन शपथग्रहण के बाद राजधानी से जल्द ही क्षेत्र लौटने की घोषणा करने वाला नेता नहीं लौटा. रामलाल रोज़ उसके लौटने की आस देखता और रोज़ ही निराश होता. अंततः ऐसा भी समय आया जब

लघुकथा

गांव का एक दिन

✍ डॉ. अशोक भाटिया

वह सुबह सबसे पहले पांच बजे उठी, भैंस को चारा डाला, फिर जंगल-पानी गयी फिर आकर पति को उठाया, फिर उसे चाय पिलायी और ख़ुद पी, फिर भैंस का दूध निकाला, फिर उसे नहलाया, फिर उसका गोबर उठाकर उपले बनाने ले गयी, फिर आकर आटा गूंथा, सब्ज़ी काटी, सब्ज़ी-रोटी बनायी, फिर दोनों बच्चों को उठाया, नहलाया, खाना खिलाया, स्कूल के लिए तैयार किया, फिर पति को खाना खिलाया, फिर सबके बर्तन उठाये, फिर ख़ुद रोटी खायी, फिर भैंस को चारा डाला, फिर सारे घर में झाड़ू लगायी, बर्तन साफ़ किये, सारे घर में पोछा लगाया, फिर कपड़े धोने चली गयी और स्नान किया. आकर दोपहर को रोटी बनायी और सबको खिलायी, फिर गोबर उठाकर ले गयी, खेत में काम किया, वापसी पर भैंस के लिए चारा लायी, आकर रात के लिए खाना बनाया और खिलाया, फिरसे सबके बर्तन उठाये और साफ़ किये, फिर दूध गर्म करके बच्चों को पिलाया और उन्हें सुलाया, फिर सारा दिन ताश खेलकर और शाम को शराब पीकर आ धमके पति को संभाला, उसकी गालियां सुनीं, उसे खिलाया, उसका बलात्कार सहकर उसे सुलाया, फिर सन्नाटे में बैठकर बचा-खुचा खाया और थकान के साथ सो गयी. फिर सुबह सबसे पहले पांच बजे उठी, फिर....

✉ १८८२, सेक्टर १३, करनाल-१३२००१ (हरियाणा).

रामलाल ने उसके लौटने की राह तकनी छोड़ दी और सब कुछ भुलाकर अपने कार्य में रम गया.

इस तरह कई महीने बीत गये. अचानक एक दिन रामलाल ने जगह-जगह चिपके पोस्टरों से जाना कि दुर्गा पूजा के अवसर पर नेता क्षेत्र आ रहा है. दशहरा मेले का उद्‌घाटन उसी के कर कमलों से संपन्न होगा. इस अवसर पर उसका नागरिक अभिनंदन भी किया जायेगा. हालांकि, रामलाल के मन में नेता के आगमन को लेकर तब भी संशय था लेकिन जब दुर्गा मंदिर से सटे मैदान में भव्य मंच का निर्माण होने लगा तो वह निश्चिंत हुआ.

उसकी आशाएं एक बार फिर जागीं. उसका चहेता नेता निर्धारित तिथि को सचमुच आया. फीता काटकर मेले का उद्‌घाटन करने के बाद उसने मंच से लोगों को संबोधित भी किया. इस बीच अपार भीड़ को किसी तरह चीरता हुआ रामलाल मंच के समीप भी पहुंचा लेकिन न उसने उसे तवज्जो दी और न उसके सुरक्षाकर्मियों ने रामलाल को कुछ कहने-सुनने दिया.

इसके कुछ दिन बाद काफ़ी जतन कर रामलाल एक बार राजधानी भी गया लेकिन वहां पता चला कि वह दिल्ली चला गया है. दो-तीन दिन वह विधायक निवास में ठहरा भी लेकिन नेता से भेंट न हो सकी. अंततः वह निराश गांव लौट आया और एक बार फिर सब कुछ भुलाकर अपने काम में मगन हो गया.

दिन पर दिन बीतते रहे. कुपोषण की शिकार फूलो को न शिलाजीत ने ताकत दी और न पंखराज से कोई फ़ायदा हुआ. मनोकामना तो नहीं ही पूर्ण होनी थी, हुई भी नहीं. अचानक एक दिन फूलो को वह जादूगर उसके गांव में ही दिख गया. रामलाल एवं कई ग्रामीणों की उपस्थिति में फूलो ने उसे काफ़ी खरी-खोटी सुनायी. मन की भड़ास निकली तो वह संतुष्ट भी हुई. तब रामलाल को लगा कि दरअसल धोखा तो फूलो से अधिक उसके साथ हुआ. फूलो से अधिक तो वही ठगा-छला गया. फूलो ने कम से कम जादूगर को खरी-खोटी तो सुनायी लेकिन उसे तो यह सौभाग्य भी न मिला.

✉ *जहाज घाट रोड, आदमपुर,*
(काली स्थान के नज़दीक)
भागलपुर (बिहार)
मो. :९९३४८९११४१/
९४७२४४१२७४
E-Mail – dkusum.1959@gmail.com

आमने-सामने

मेरी कहानी, मेरी जुबानी

✍ सविता बजाज

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा और डॉ. सुरेंद्र गुप्त से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है सविता बजाज की आत्मरचना.

मैं जब बच्ची थी तो पांव ज़मीन पर न पड़ते. गाती थी, बजाती थी, डांस करती, ड्रामा करती. रेडियो के प्रोग्रामों में हिस्सा लेती, बच्चों की पत्रिकाओं के लिए लेखन करती. नवभारत टाइम्स में छपे एक लेख के पारिश्रमिक के रूप में मुझे पैंतालीस रुपयों का चेक मिला तो मैं हैरान थी. रेडियो से बहुत कम पैसे मिलते थे. लेखन का चेक मुझे आठवीं क्लास में मिला था. बहुत बड़ी बात थी उस ज़माने में एक बच्ची को पैंतालिस रूपये का चेक का मिलना, वह भी लेख के लिए. बस मेरे लेखन की गाड़ी चल निकली. बहुत सारी हिंदी पत्रिकाओं में छपने लगी. अभिनय और संगीत में भी नाम होने लगा. अवार्ड मिलने लगे.

समय अपनी रफ़्तार से भाग रहा था. काम अपने आप मुझे मेरी प्रतिभा के बल पर मिल रहा था. बंबई में श्याम बेनेगल की फ़िल्म 'निशांत' में मेरे पात्र 'पौचम्मा' ने मुझे बहुत शौहरत और पैसा दिया तो साथ ही साथ लेखन का काम भी जोरों से चल निकला. टाइम्स ऑफ इंडिया की पत्रिकाएं — 'माधुरी' और 'धर्मयुग' में मैं नियमित छपती. मेरे कई लेखों की वजह से बहुत से फ़िल्मवाले मशहूर हो गये. बहुत सारे अनुरोध करते थे कि मैं उनके बारे में क्यों नहीं लिखती. मुझे बहुत सारी लेखिकाओं के कटीले बाणों का भी सामना करना पड़ा. मेरे लेखन के गुरू डॉ. धर्मवीर भारती जी मेरी बातें सुन हंसते, लेखन के गुर सिखाते और हमेशा आगे बढ़ने की प्रेरणा देते. सही मायने में मुझे 'धर्मयुग' ने बहुत शोहरत और पैसा दिया. मेरा नाम लेखिकाओं की श्रेणी में आने का सारा क्रेडिट डॉ. भारती जी के 'धर्मयुग' और 'माधुरी' पत्रिका को जाता है शुरू में जिसके अरविंद कुमार और बाद में श्री विनोद तिवारी संपादक थे.

वह युग स्वर्ण युग था. मैं रेडियो करती. टी. वी. प्रोग्रामों में हिस्सा लेती. लेखन करती, फ़िल्म डिवीजन की छोटी-छोटी फ़िल्मों में काम करती. ड्रामा करती. कहने का

सविता बजाज रंगमंच, टेलीविज़न और फ़िल्मों की भावप्रवण अभिनेत्री के रूप में जानी जाती हैं. अभिनय की उनकी अपनी एक अलग ही शैली है. हर भूमिका को वे जीवंत कर देती है. वे स्वतंत्र रूप से आज भी पत्रकारिता से जुड़ी हैं. उन्होंने नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा से १९६८ में स्नातक की डिग्री प्राप्त की एवं कई संस्थाओ से सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के पुरस्कार भी जीते. आप फ़िल्म राइटर्स एसोसिएशन से भी संबद्ध हैं.

: संपर्क :
पो. बॉक्स-१९७४३, जयराज नगर,
बोरिवली (प.), मुंबई-४०००९२
फ़ोन : ९२२३२०६३५६

तात्पर्य मैं आल रॉउंडर थी. कला के फूल चारों दिशाओं से मुझ पर बरस रहे थे. समय की कमी होने लगी. लेकिन सविता बजाज धीरे-धीरे फ़िल्मों में भी मशरूफ हो गयी. अचानक एक न्यूज़ ने मुझे झकझोर कर रख दिया. डॉ. भारती संसार को छोड़ गये. मैं तब आउटडोर गयी थी कहीं शूटिंग के लिए. बहुत रोयी. मेरी एक भाभी भी उन्हीं दिनों भगवान को प्यारी हो गयी थीं. जीवन कभी रुकता नहीं, समय के चक्र से सभी बंधे हैं. सबको एक दिन जाना ही है. मैं भी रो–धोकर चुप हो ली. कहीं कुछ लिखने को मन न मानता था.

समय ने करवट बदली डॉ. अरविंद जी की पत्रिका 'कथाबिंब' मुझे धर्मयुग के बाद उच्चकोटि की लगी तो उससे जुड़ गयी और अपने आपको अभिनय और लेखन में झोंक दिया. मालूम न था 'कथाबिंब' में भी मेरे लेख बहुत मशहूर हो जायेंगे.

यह मेरे साथ पहले से होता रहा है. कुछ लेखिकाएं कहां चुप बैठनेवाली थीं. फ़ोन करके अपने विषबाण छोड़ती रहतीं. मैंने उन औरतों की किसी बात का बुरा नहीं माना, अपितु उनके शब्दों को फूलों की तरह लिया. उनकी ईर्ष्या मेरे प्रति ख़त्म न हुई थी. कइयों ने मुझे सीढ़ी भी बनाना चाहा. मेरे क़रीब आना चाहा, लेकिन मैं उनके हाथ नहीं आयी. मुझे वैसे भी ऐसी औरतों से बहुत डर लगता है. उनका घर उनकी छपी पुस्तकों से भरा पड़ा रहता है. पचासों पुस्तक विमोचन प्रोग्राम भी होते रहते हैं लेकिन उनकी किसी कहानी पर आज तक न कोई सीरियल बना, न फ़िल्म. वे सविता बजाज से उनकी कहानियां बिकने में मदद चाहती थीं.

'कथाबिंब' ने सही मायने में इस ढलती उम्र में मुझे मेरे चाहने वाले पाठकों तक दोबारा पहुंचाया जिसके लिए मैं अरविंद जी की हमेशा आभारी रहूंगी. 'कथाबिंब' में छपने के बाद मैं बहुत सारी पत्रिकाओं में छपने लगी, पाठकों ! तहेदिल से कहती हूं कि मैं एक छोटी सी लेखिका और कलाकार हूं. इसलिए मेरे लेखन से किसी बड़ी लेखिका को नाराज़ नहीं होना चाहिए. हां, मेरे लेखों से अगर किसी पुरुष या स्त्री को दुःख पहुंचा हो तो क्षमाप्रार्थी हूं.

मैंने ज़िंदगी से बहुत कुछ सीखा जिसने भी मुझसे दोस्ती की मतलब से की. मतलब निकल जाने पर पलट कर नहीं देखते लोग. पचासों की मदद की लेकिन अब और नहीं, थक गयी हूं. बाक़ी जीवन शांति से काटना चाहती हूं. चैन से जीना चाहती हूं. अपना बोझ ख़ुद के कंधों पर लादकर चलती हूं. आज तक किसी के सामने हाथ नहीं फैलाये. गर्व है मुझे इस बात पर कि इस पुरुष प्रधान समाज में काम के लिए कहीं किसी तरह का समझौता नहीं करना पड़ा. काम अपने आप मेरी क्षमता के बल पर मेरी झोली में आता रहा. आ रहा है. हां, एक बात पीड़ा देती है – शौहरत, नेम, फेम और पैसे ने मुझसे मेरे मित्र छीन लिये. कुछ मेरे अपने भगवान को प्यारे हो गये और कुछ अपने होते हुए भी बेगाने बन बैठे. इस शौहरत, फेम ने मेरा पूरा जीवन ही निगल लिया. मानों मुझे ख़ुद को, एक अकेली औरत कलाकार को जीने का कोई हक़ ही नहीं. क्या सारी ज़िंदगी लोगों की मदद ही करती रहूं. आज कल एक वानप्रस्थ आश्रम में कभी कभी जाती हूं

तो वहां भी अजीब सी बातों का सामना करना पड़ता है. कुछ वृद्ध पुरुष-स्त्री कहते हैं आप तो अकेली हैं, सब कुछ हमारे नाम कर दो.

मेरे चाहने वाले मुझे इतना ज़्यादा चाहते हैं कि आर्टिस्ट कोटा में म्हाडा का जब मेरा घर निकला तो चील-कव्वों की तरह मुझ पर झपटे, मधुमक्खियों की तरह मुझसे चिपके रहे. किसी की बुआ, आंटी, मां और न जाने कितने नये रिश्ते पैदा हो गये. एक लड़का जिसे मैं क़रीब बीस साल से जानती थी, बेटा कहती थी उसका तो रूप ही बदल गया. अपनी पत्नी को आगे कर दिया. वह बोली – आंटी, आपने जवानी में अपने लिए कमाया, अब बुढ़ापे में हमारे लिए कमाओ. क्या करेंगी इस घर का, हमारी बेटी के नाम कर दो. हम उसकी शादी में दे देंगे. चार-पांच साल पहले जब घर मिला, बच्ची की उम्र ७-८ साल थी. अभी आप कमा के सब हमें दे दो. सब मेरे पति के नाम कर दो. ''मैं चौंकी और बोली'' — मैंने तो सब कुछ कहीं विल किया हुआ है.

पत्नी बहुत चालाक थी बोली — ''अरे आंटी पाच सौ वकील को दे देंगे, सब विल बदल देगा. घर तो हमारे नाम होगा, आपका जब तक मन करे रहना.'' पति साहब ने एक करारा जुमला फेंका — ''अरे अगर आंटी बीच में ही लुढ़क गयी तो ? हमें पांच साल तक घर नहीं मिल सकता.'' मेरे पैरों तले से ज़मीन खिसक गयी थी.

कहने का मतलब लोगों ने, यानी कि मेरे चाहनेवालों ने अपनी इतनी ज़्यादा चाहत दिखायी कि तंग आकर मुझे म्हाडा का घर छोड़ना पड़ा और मधुमक्खियां पता नहीं कौन से नये शहद के छत्ते से चिपक गयीं.

एक नामी लेखिका जो धर्मयुग में भी कभी छपती थी दिल्ली से फ़ोन करके मुझे कहती है — ''मालूम न था तुम इतना बढ़िया भी लिख लेती हो. तुम तो जीते जी अमर हो गयी.''

एक और लेखिका है, जिससे कभी अच्छी दोस्ती थी. जहां-जहां मिलवाने को कहती मैं ले जाती. वह एक चैरिटेबल ट्रस्ट भी चलाती थी जहां छोटे-छोटे बच्चों को अभिनय, संगीत वग़ैरह की ट्रेनिंग दी जाती थी लेकिन फोकट में नहीं. एक दिन उसने मुझ पर एक हथकंडा अपनाया. बोली — ''तुम अपना सब कुछ पैसा वग़ैरह मेरी ट्रस्ट के नाम कर दो, मुझे मेरी बेटी के नाम घर

ख़रीदना है, लेकिन तुम यह बात अपने घरवालों या किसी को नहीं बताओगी. बहिन दिल्ली जाकर घर वालों से एक पत्र लिखकर वकील से ठप्पा लगवा लो कि तुम्हारे मरने के बाद उनका तुम्हारा किसी चीज़ पर हक़ नहीं.'' मैं बोली — ''मैडम, मुझे बंबई में प्रापर्टी नहीं ख़रीदनी. दिल्ली में मेरा भरा पूरा परिवार है. बहुत प्रॉपर्टी है.'' महिला चहकी — ''तुम्हें प्रॉपर्टी ख़रीदने को कौन कह रहा है. घर तो बेटी के ही नाम रहेगा. हां तुम्हारा एक स्थायी पता हो जायेगा, क़िराये के मकान से छुट्टी मिल जायेगी. कहीं जाना हो, हम दोनों कार से जायेंगे, शूटिंग वगैरह में.'' मेरे दिमाग़ की घंटी बजी — तो यह बात है औरत मुझे लालच में फंसाकर चारों तरफ़ से क़ैद कर मुझे सीढ़ी बना रही है. मैं बोली — ''कल सोचकर बताऊंगी.''

रात भर नींद नहीं आयी. एक अकेली औरत की दोस्त बनकर औरत ही फंसाने के लिए कितनी चालें चलती है ? काहे की दोस्ती, दोस्ती को बदनाम करती हैं ऐसी महिलाएं. मुझे सब फंसाना चाहती हैं. सरल सच्ची और ईमानदार हूं तो मतलब सबका एक है मुझ पर. मैंने ठेका ले रखा है सबकी मदद करने का, ऑफ़िस खोला हुआ है चैरिटी का. सचमुच हाल ही में ज़्यादा छपने के साथ बहुत खट्टे अनुभवों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है. अरे भई मुझे मेरी ज़िंदगी जीने दो. लोग मेरा पीछा नहीं

छोड़ते, न चैन से जीने देते हैं और न मरने. फ़ोन करके पैसा मांगते हैं क्या एक कलाकार, अकेली औरत का जीवन इतना जटिल होता है ? इसलिए सोचा अब बस, और नहीं. सारी ज़िंदगी लोगों की मदद कर करके बूढ़ी हो गयी, लेकिन मेरी तो कोई मदद नहीं करता. बल्कि इस उम्र में भी लोग लूटने की फ़िराक में रहते हैं. मैंने कलाकार होने की क़ीमत चुका दी लेकिन मेरा पूरा जीवन इसमें स्वाहा हो गया. कला की बलि चढ़ गया. चारों दिशाओं में लूट मची है, लोग चील कव्वों की तरह एक दूसरे को नोंच रहे हैं. अरविंद जी की फ़ैन हूं कैसे छोड़ सकती हूं मैं 'कथाबिंब' को. अरविंद जी, नहीं लिखूंगी तो मेरे दिमाग़ को जंग लग जायेगा. पाठकों ! मैं जीवन के एक ऐसे मोड़ पर आ गयी हूं जिसे न्यूट्रल कहते हैं. मशहूर लेखक वेद राही जी की भाषा में ज़ीरो होने की कोशिश करो सविता. कर रही हूं. नेम, फेम, पैसा सब कच्ची उम्र में पा लिया, सब बेमानी है. बस जब तक ज़िंदा हूं चैन से, शांति से जीना चाहती हूं. मुझ कला की दीवानी बावरी पर एक शेर ख़ूब फिट बैठता है —

ज़िंदगी घटती गयी, ख़बर न हुई,
वक़्त की बात, वक़्त पर न हुई,
ज़िंदगी के मुआमले मत पूछ,
कट गयी गोया, बसर न हुई.

मेरे पाठक मित्रों, मैं ज़रूर लिखूंगी लेकिन कम. नहीं चाहती और नयी-नयी लेखिकाओं के रास्ते का रोड़ा बनूं. न कहीं अवार्ड लेने जाती हूं और न ही लेती हूं. साफ़ मना कर देती हूं. इसलिए अभिनय भी कम कर दिया है. उम्र भी तो बढ़ रही है.

गुलज़ार साहब का एक गीत हाज़िर है —

नाम गुम जायेगा,
चेहरा यह बदल जायेगा,
मेरी आवाज़ ही पहचान है
गर याद रहे.

□□

ग़ज़ल

✍ सच्चिदानंद 'इंसान'

बाद मुद्दत के वह नज़र आया,
राह भटका था आज घर आया.
जाने क्यों था खफ़ा-खफ़ा मुझसे,
जब मिला दिल मेरा था भर आया.
दौर जुल्म व सितम का जारी है,
कोई रहबर कहां नज़र आया.
राह सूनी डगर न पहचानी,
थक गये हैं क़दम न दर आया.
गुज़रा लम्हा न जानें क्यों इंसा,
ले के यादों का खंडहर आया.

सहारा मिशन स्कूल, मुंदीचक, भागलपुर-८१२००१ (बिहार).

लघुकथाएं

✍ अशोक भाटिया

वह

'क' को अपनी जाति पर गर्व था.

वह बोला - हमारी संस्कृति महान है. इसकी विरासत की रक्षा करनी चाहिए.

'ख' के पास ख़ूब धन था.

वह बोला - संस्कृति नहीं, धर्म ही सब कुछ है. भगवान, तेरा लाख शुक्र है.

'ग' के पास भूख थी.

वह बोला - हे भगवान, मुझे तू नहीं, रोटी चाहिए.

जन्म

एक महिला के दो पुत्र थे.

एक दिन उसकी एक सहेली ने पूछा - क्या तुम्हें एक लड़की की ज़रूरत नहीं लगती? घर में रौनक हो जायेगी.

महिला तुरंत बोली - न, न, ऐसा हो गया, तो इनका बाप तो मर ही जायेगा.

सहेली ने कहा - तू पैदा हुई तो क्या तेरा बाप मर गया था?

१८८२, सेक्टर १३, करनाल-१३२००१ (हरियाणा).

सागर/सीपी

हर युग में चाणक्य की ज़रूरत है, आज विश्व को गांधी की भी ज़रूरत है.

✍ **डॉ. चंद्र प्रकाश द्विवेदी**

(साहित्यकार व फ़िल्म निर्देशक चंद्र प्रकाश द्विवेदी से मधु अरोड़ा की 'कथाबिंब' के लिए भेंट वार्ता)

आपको लगता है कि आज के युग में एक और चाणक्य की ज़रूरत है ?

मैं यह मानता हूं कि हर युग में चाणक्य की ज़रूरत है. देश के सामने महान चुनौतियां कल भी थीं, आज भी हैं. मैं तो मानता हूं कि आज विश्व को गांधी की भी ज़रूरत है. ऐसा नहीं है कि आज देश में चाणक्य और गांधी जैसे लोग नहीं हैं, लोग हैं पर उनके पास वैसे संकल्प नहीं हैं. साथ ही यह भी सच है कि चाणक्य रोज़-रोज़ पैदा नहीं होते.

चाणक्य ही क्यों चाहिए ? और कोई विकल्प क्यों नहीं ?

प्राचीन संदर्भों में किसी बात को ग़लत रास्ते से सही रास्ते पर लाने की जो प्रक्रिया होती है, वह है — नीति. पहले राजा हुआ करते थे जिनका काम राज-काज देखना और नीति से कार्य करना था. लेकिन आज राजनीति का अर्थ बदल गया है. आज राजनीति यानी छल-प्रपंच प्रमुख हो गया है. पहले के राजनेता और राजनीतिज्ञ दृष्टिवेत्ता थे. मैं यह नहीं कहता कि आज वैसे राजनेता नहीं हैं. आज के युग में भी होते होंगे और हैं. अब देखिए, अरुणा राय — जिनके प्रयत्नों से 'सूचना का अधिकार' आया और उस वजह से हम इस मुक़ाम तक पहुंचे कि चैनलों के माध्यम से जेसिका लाल के विषय में पूछ सकते हैं. आज के समय में भी ऐसे लोग होंगे लेकिन ज़रूरत है संकल्प लेने की और कार्य करने की.

आपके पास मेडिकल डिग्री होने के बावजूद आप थियेटर, सिनेमा, साहित्य, अभिनय और सीरियल से जुड़े हैं. इस रुझान का कोई विशेष कारण ?

यह कहना बड़ा मुश्किल है. हर व्यक्ति की एक रचनात्मक अभिव्यक्ति होती है. कोई कविता के माध्यम से, कोई कहानी के माध्यम से, कोई पेंटिंग के माध्यम से ख़ुद को अभिव्यक्त करता है. उदाहरण के तौर पर मोहन आगाशे, श्रीराम लागू, जब्बार पटेल — ये लोग भी तो डॉक्टर थे लेकिन अभिनय के क्षेत्र में आये. इन्होंने बहुत अच्छी फ़िल्में कीं, निर्देशन किया. जहां तक मेरी बात है तो मुझे जो कहना है, उसे चित्रों के माध्यम से सोचता हूं. अब आप कह सकती हैं कि मैं फ़िल्में बनाता हूं, तो मेडिकल प्रेक्टिस कब करता हूं ? तो मैं जब काम करता हूं तब मेरे पास १५० लोगों की टीम होती है और उनका मैं डॉक्टर होता हूं.

आप किस विधा में ख़ुद को सहज महसूस करते हैं ?

मुझे लगता है कि मैं लिखने में स्वयं को सहज महसूस करता हूं. निर्देशन में आपको बहुत सारे लोगों के साथ इंटरएक्ट करना होता है. जब तक आप अपने गढ़े चरित्रों के साथ हैं आप सहज हैं. जैसे ही चरित्र का स्थान अभिनेता ले लेता है स्थितियां बदल जाती हैं. और ज्यों–ज्यों आपके शब्द और गढ़े हुए चरित्र परदे पर आकार लेने लगते हैं तो आप पाते हैं कि आपकी कल्पना या कला बोध और सौंदर्य बोध और आपके सामने रचे जा रहे यथार्थ में बहुत अंतर होता है. शायद इसीलिए किसी ने कहा होगा, 'जहां न पहुंचे रवि वहां पहुंचे कवि.'

आपने वीर सावरकर फ़िल्म का निर्देशन क्यों नहीं किया, जबकि आपको कई बार ऑफ़र मिला

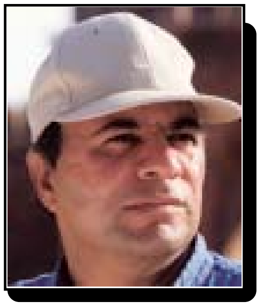

जन्म : १९६०, दोदुआ, सिरोही (राज.)

भारतीय फ़िल्म निर्देशक और पटकथा लेखक. डॉ. द्विवेदी चाणक्य (१९९१) टेलीविज़न महाकाव्य निर्देशन के लिए जाने जाते हैं. सीरियल में चाणक्य की प्रमुख भूमिका भी आपने निभायी. अन्य प्रमुख काम : २००३ की फ़िल्म 'पिंजर'. यह फ़िल्म भारत के विभाजन के दौरान हिंदू-मुस्लिम तनाव के बीच स्थित एक दुखद प्रेम कहानी पर आधारित है, इस उपन्यास की लेखिका अमृता प्रीतम हैं. डॉ. द्विवेदी ने १९९६ में मृत्युंजय टेलीविज़न श्रृंखला का निर्देशन भी किया है. यह मृत्युंजय के जीवन पर आधारित है. यह महाभारत के एक प्रमुख चरित्र पर आधारित है. इसी के लिए आपको स्क्रीन वीडियोकॉन का सर्वश्रेष्ठ निर्देशक पुरस्कार भी प्राप्त हुआ.

: संपर्क :
३ लक्ष्मी इंड इस्टेट, लिंक रोड,
अंधेरी (प.), मुंबई-४०००५३.
मो. : ९८२००५८८५३

था, इसका क्या कारण था ?

मैंने वीर सावरकर फ़िल्म बनाना स्वीकार किया था. परंतु इस फ़िल्म को लेकर बाबूजी (सुधीर फडके) के कुछ विशेष आग्रह थे. बाबूजी की निष्ठा पर कोई भी व्यक्ति प्रश्नचिन्ह नहीं लगा सकता, लेकिन वे मूलत: संगीत के आदमी थे. मेरा दुर्भाग्य कि मैं उनको अपनी बात समझा नहीं पाया. मैं बाबूजी के प्रखर हिंदुत्व का समर्थक नहीं था. न ही मैं एक निर्देशक के तौर पर सावरकर के हिंदू राष्ट्रवाद को फ़िल्म के माध्यम से रखना चाहता था. मैंने इन्हीं असहमतियों की वजह से वीर सावकरकर फ़िल्म छोड़ दी. बाबूजी और फ़िल्म से जुड़े दूसरे महानुभावों के कहने पर फिर दोबारा मैंने फ़िल्म करना स्वीकार किया पर समय के साथ कई बातों को लेकर मतभेद बढ़ता गया और मैंने फिर फ़िल्म छोड़ दी. मैं आपको बता दूं कि सावरकर फ़िल्म बनाने से पहले मैं पेरिस और मार्सेलिस गया और वास्तव में उस जगह को देखा जहां से सावरकर समुद्र में कूदे थे. पेरिस में मैं नेशनल बेबिलोथिक लायब्रेरी देखना चाहता था, अन्यथा लोग तो सिर्फ सैर-सपाटे की जगहों के बारे में पूछते हैं. कई महीनों की मेरी मेहनत फिर एक बार बेकार गयी.

आपने सीरियल बनाने में सिर्फ़ इतिहास का ही दामन क्यों पकड़ा है ?

इसका एक तो यह कारण है कि इतिहास के इलाक़े में बहुत सारे लोग काम नहीं कर रहे हैं. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सीरियलों के लिए आपको उस कालखंड के, उस परिवेश के, उस रहन-सहन के, उन लोगों के विषय में शोध करना होता है, जांच-पड़ताल करनी होती है. यह एक चुनौती भरा काम होता है. आज वर्तमान में जिस तरह के सीरियल बन रहे हैं, उनमें चुनौती जैसी बात न तो लगती है और न दिखती है. सारे पात्र, सारी गलियां जानी-पहचानी लगती हैं. मैंने सामाजिक फ़िल्म भी बनायी है. पिंज़र सामाजिक फ़िल्म थी और सफल भी हुई थी. मुझे प्रेमकथा में कोई रुचि नहीं है. सम्राट अशोक हों, चंद्रगुप्त हों, चाणक्य हों, मुझे इन फ़िल्मों/सीरियलों को करने में मज़ा आता है. वहां चुनौती जो है.

चाणक्य सीरियल के अतिरिक्त आपने जो भी सीरियल प्रारंभ किये, वे अंत तक नहीं पहुंच पाये, इसका क्या कारण है ?

चाणक्य सीरियल भी पूरा नहीं हुआ था. मुझे याद आता है कि जब मृत्युजंय सीरियल बंद हुआ तो एक दर्शक का मेरे पास पत्र आया था. उसने लिखा था कि ग़लती चंद्र प्रकाश की नहीं है, ग़लती बाज़ार की है और उसका यह वाक्य मुझे आज तक याद है.

आप अपनी हठधर्मिता के लिए जाने जाते हैं, उससे आपका कितना नुक़सान हुआ है ?

यह तो लोगों का पूर्वाग्रह है मेरे प्रति. मेरे लिए संकल्प महत्वपूर्ण है. जो लोग मेरे क़रीब हैं, वे इस बात को जानते हैं. हाल ही में मैंने महाभारत पर बन रहा सीरियल छोड़ा. हालांकि उस पर मैंने दो वर्ष काम किया. मैं बाज़ार के लिए सांस्कृतिक धरोहर और एक महाकाव्य के साथ उपहास नहीं कर सकता था. मैं जानता था कि

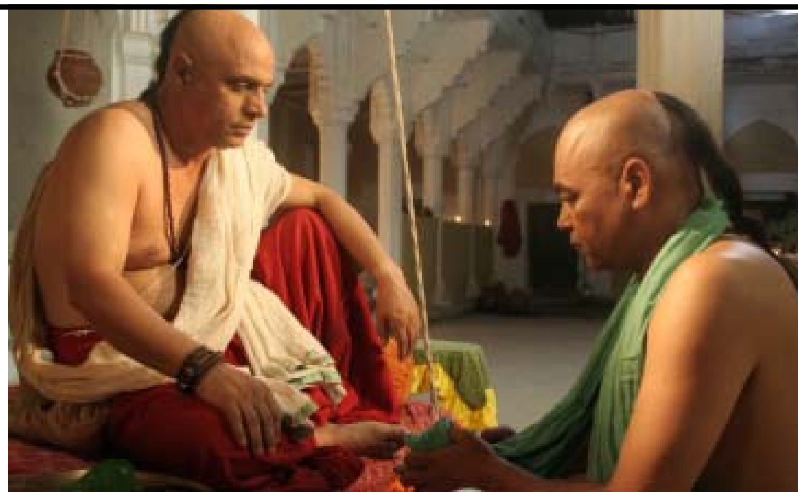

चाणक्य सीरियल का एक दृश्य.

धारावाहिक बनने के बाद मुझसे शायद कोई सवाल भी न करे पर भारत के गौरव, अतीत के गौरव और इतिहास की बाज़ार की शर्तों पर मैं हत्या करने के लिए तैयार न हुआ, एक बात स्पष्ट है कि जिस चीज़ को मैं मन से स्वीकार नहीं कर सकता, उसे करता ही नहीं. यदि मैं अपने क्षेत्र में श्रेष्ठ नहीं हूं तो निकृष्ट भी नहीं हूं और यह मैं अच्छी तरह जानता हूं.

अनेक वर्षों से गौतम बुद्ध पर फ़िल्म बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं, आपने कभी इस फ़िल्म को बनाने के बारे में सोचा है ?

गौतम बुद्ध पर जो लोग यानी बी. के. मोदी फ़िल्म बनाने की सोच रहे थे, मैं भी कभी उसका हिस्सा रहा हूं. देखिए, यह बहुत बड़ा प्रॉजेक्ट है. सिर्फ़ पैसा ही उस फ़िल्म को बनायेगा, ऐसा मैं नहीं मानता. आशुतोष गोवारीकर, मीरा नायर आदि इस फ़िल्म को बनाना चाहते थे, पर इस बाबत क्या हुआ, मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं है.

यदि आपको किसी चैनल का हेड बनने का प्रस्ताव आये तो आप किस चैनल का हेड बनना चाहेंगे और क्यों?

मैं किसी भी चैनल का हेड नहीं बनूंगा और यह प्रस्ताव आयेगा भी नहीं. सच बात तो यह है कि चैनलवाले मुझ पर भरोसा नहीं करेंगे. वे ख़ुद भी जानते हैं कि मैं जो काम कर रहा हूं, उस पर भीड़ को विश्वास नहीं है.

हाल में आपने प्रसिद्ध उपन्यासकार काशीनाथ सिंह की पुस्तक 'काशी का अस्सी' जैसी कृति पर 'मोहल्ला अस्सी का' नामक फ़िल्म बनायी है, यह प्रेरणा आपको कहां से मिली ?

मैं जहाज़ में यात्रा कर रहा था. वहां इंडिया टुडे नामक पत्रिका मेरे हाथ लगी. उसमें एक चित्र ने मेरा ध्यान आकर्षित किया. पढ़ने लगा तो पता चला कि वह उषा गांगुली द्वारा निर्देशित काशीनामा का चित्र है और नाटक की उसमें समीक्षा लिखी गयी है. काशीनामा काशीनाथ सिंह के काशी का अस्सी पर आधारित था. नाटक का विषय बाज़ार के बढ़ते प्रभाव का था. समाज के हो रहे बाज़ारीकरण और वैश्वीकरण का था. उन दिनों मैं उपनिषदों पर कार्य कर रहा था. सो अपना वह काम पूरा करने के बाद काशीनाथ सिंह से मिला. उनसे बातचीत की और सब तय हो गया. इस उपन्यास पर अट्ठारह महीने लेखन किया, स्क्रिप्ट के चौदह ड्राफ्ट तैयार किये और बयालीस दिनों में शूटिंग पूरी की.

चूंकि आप साहित्य से भी जुड़े हैं तो साहित्यिक अश्लीलता पर क्या कहना चाहेंगे ?

इस विषय पर मुझे लगता है कि लोग प्रयोग कर रहे हैं. भारत की यही विशेषता है कि वह हर व्यक्ति को प्रयोग करने का अवसर दे रहा है. सच कहूं तो इन प्रयोगों को रोकना नहीं चाहिए.

: संपर्क :
एच-१/१०१,रिद्धि गार्डन्स,
फिल्म-सिटी रोड, मालाड (पूर्व),
मुंबई-४०००९७.
मो. - ९८३३९५९२१६

अल्टीमेटली साहित्य की क्या उपादेयता है ?

साहित्य की उपादेयता आप भलीभांति देख रही हैं. हर व्यक्ति कविता लिख रहा है, हर व्यक्ति कहानी लिख रहा है, लेकिन पाठक कहां है साहित्य का? समाचारपत्रों का भी हाल आप देख ही रही हैं. आज स्थिति यह है कि लेखक ख़ुद अपनी पुस्तक छपवा रहा है. उसकी पुस्तक के ख़रीददार नहीं हैं. दूसरे, आज अभिव्यक्ति के कई माध्यम हैं. ट्विटर, फ़ेसबुक, ई-मेल, एमएसएन मैसेंजर, जी-मेल, चैट आदि आदि. हर वक़्त आदमी कुछ न कुछ बोल रहा है, कुछ न कुछ कर रहा है, और कुछ नहीं तो एसएमएस ही कर रहा है. मैं आपको बताऊं कि मैं ई-मेल आईडी पर इनविजिबल रहता हूं. आप काम कर रहे होते हैं और लोग अचानक ही बीच में कूद पड़ते हैं, 'क्या कर रहे हो?' आप यह न समझें कि मैं इन साधनों को अड़चन मानता हूं. हो सकता है कि अभिव्यक्ति के इन माध्यमों में से भी कोई साहित्य निकले.

फ़िल्मों में शब्दों के चुनाव पर आपका क्या दृष्टिकोण है ?

मुझे लगता है कि वह दौर गया जब शब्दों का चयन होता था. आज फ़िल्मों में शब्दों की स्थिति अति साधारण है. अगर गिन लें तो फ़िल्मों में प्रयोग किये जानेवाले शब्द ३००-४०० से ज़्यादा नहीं हैं. शब्द की संपत्ति न बढ़ने का कारण जहां तक मैं समझ पाया हूं वह यह है कि सब चीज़ों का साधारणीकरण कर दिया गया है और उनसे काम चल रहा है. 'मैं तुमसे नफ़रत करता हूं, मैं तुमसे प्यार करता हूं' से हम आगे जा ही नहीं रहे.

बात चल ही रही है तो आप लिव-इन-रिलेशनशिप के बारे में क्या सोचते हैं ?

मैं इस व्यवस्था को बुरा नहीं मानता. बिना जाने-पहचाने पुरुष/महिला से विवाह करना और फिर उसे भुगतना बहुत कठिन कार्य है. मुझे लगता है कि विवाह करने की प्रक्रिया कठिन और अलग होने की प्रक्रिया आसान कर देनी चाहिए. हमने इसे उल्टा कर दिया है. अपने देश में विवाह करना आसान और अलग होने की प्रक्रिया कठिन है.

आपकी पत्नी मंदिराजी भी निर्देशन क्षेत्र में हैं, फ़िल्मों को लेकर कभी उनसे विवाद हुआ है ?

तनाव बहुत होता है. अब हम दोनों तय कर रहे हैं कि दोनों साथ काम न करें. उस तनाव का असर घर पर भी पड़ता है. इसीलिए 'काशी का अस्सी' के समय वे प्रोडक्शन सेक्शन में थीं. वे प्रोडक्शन सेक्शन में न भी हों तो भी प्रोडक्शन में उनका हमेशा हस्तक्षेप रहता है. उनके हस्तक्षेप के बावजूद मैं कह सकता हूं कि वे मुझसे ज़्यादा बेहतर काम करती हैं.

- मधु अरोड़ा

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित साफ़-साफ़ लिखें. आजकल इलेक्ट्रॉनिक मनीऑर्डर का प्रचलन हो जाने के कारण मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित पूरी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

संपादक

मुस्लिम-समाज केंद्रित चेहरों की शिनाख़्त

✍ अरुण अभिषेक

एक और चेहरा (क. सं.)**: डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'**
प्रकाशक : बोधी प्रकाशन, जयपुर-३०२००६
मू. ७०/-

कथाकार डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम' अपने नये संग्रह 'एक और चेहरा' में प्रकाशित दस कहानियों के माध्यम से, पाठकों के बीच, अपनी जबर्दस्त पहचान बनाने की पूरी सामर्थ्य रखते हैं.

संग्रह की शीर्षक-कहानी 'एक और चेहरा' मुस्लिम समाज के भीतर उन तमाम छद्म चरित्रों का नक़ाब खींचती है जो धर्म की आड़ में विकृत-संस्कृति को जन्म देते हैं. मस्जिद के मौलाना एक तरफ़ तो पांचों वक़्त नमाज अदा करने की अहमियत बताते हैं, इस्लाम धर्म एक सर्वोत्तम जीवन-शैली है, आदि पर, गंभीरतापूर्वक वक्तव्य भी देते हैं, और दूसरी ओर मस्जिद में अवस्थित मदरसे में पढ़ने आयी मासूम बच्चियों का यौन-शोषण करते हैं. ये बातें युवाओं और घर की औरतों के माध्यम से जग जाहिर होती हैं. लेकिन घर के मर्दों को उन पर यक़ीन नहीं होता. मौलाना की शख़्सियत क्या मजहब के खिलाफ़ हो सकती है?

यहां स्त्री-अस्तित्व का सवाल भी उठ खड़ा होता है. पाठक अचंभित होता है जब मौलाना बेनक़ाब होते हैं. और साथ ही अपराध-भाव से नमाजी मुक्त होते नज़र आते हैं कि 'कुरआन में कई जगह यह बात साफ़-साफ़ कह दी गयी है कि अल्लाह अपने बंदे की नीयत और किरदार देखता है.'

कहानी 'जन्नत के पहरुए' भी धार्मिक-उन्माद में उगे जिहादियों की ग़लत मंशा को परत-दर-परत सामने लाती है. धर्म के नाम पर कत्लेआम की मंशा को बेनक़ाब करती है. इस ख्यालात के तहत कहानी के मुख्य किरदार मिश्रा जी, अहमद साहेब, कैसरवानी साहेब आदि जमकर विमर्श करते नज़र आते हैं. कहानी का यह दृष्टांत गौरतलब है - 'ऐसे ही लोग दहशतगर्दी और जिहाद की बातें करते हैं, जो सच कहें तो इसके मायने से वाकफियत भी नहीं रखते. पूरी दुनिया में दूसरी कौमों की अपेक्षा अपने ही लोगों को जिहाद और शहादत के बहाने कत्लेआम में जुटे हैं. यह अधिकार हमारे मजहब ने किसी को नहीं दिया है.' कहानी 'काफिर की बेटियां' तेज़ी से बदल रही ज़िंदगी की नयी दृष्टि को व्यक्त करती है. दरअसल यह कहानी मजहब की दीवार को तोड़ती, ज़िंदगी से रु-ब-रु होती है. कहानी की यह अभिव्यक्ति गौरतलब है — 'ज़माने की इस नयी पौध की नयी सोच ने एक नयी तहजीब की नींव रखी है, जहां न जात की दीवारें रह गयीं और न धर्म की.' इस दृष्टिकोण के तहत अंतर्जातीय एवं अंतर्साम्प्रदायिक युवक-युवतियां एक दूसरे के परिवार में बहू बनकर आ रही हैं. क्योंकि इनकी नज़रों में 'मजहब कोई दीवार नहीं रह गयी और न ही पारंपरिक संस्कृति से जुड़ी परंपराएं और सामाजिक मान्यताएं.'

संग्रह की ख़ास कहानियों में स्त्री-अस्तित्व से जुड़े उनके संकटों को भी चिन्हित किया गया है. इस दिशा में 'मां समझाती क्यों नहीं?' कहानी एक मासूम बच्ची की दम तोड़ती जिजीविषा की विवशता भरी चीख़ है. बच्ची हिना की विवशता यह है कि वह ग़रीब घर में जन्मी है. पेट की आग ऐसी है कि उसकी मां शहरों में रह रहे दंपत्ति रहमत वकील साहेब एवं उनकी पत्नी जीनत के घर उसे बतौर बंधक नौकरानी रख दी गयी है. बंधक इसलिए कि हिना के मां-बाप अपनी छोटे-मोटे व्यवसाय हेतु उक्त दंपत्ति से कुछ रुपये बतौर ऋण लिये हुए हैं. दूसरी ओर हिना का अस्तित्व संकट उसकी स्त्री-देह की वजह से भी उत्पन्न होता है. एकांत पड़ते ही रहमत साहेब हिना का यौन शोषण करते है. हद तो तब होती है, जब हिना वहशी मर्द की तमाम ग़लत हरकतों का पर्दाफाश करती है, लेकिन ऋण की वजह से उसे उन्हीं विषैले माहौल में पल-पल जीते जी मरना होता है. इसी क्रम में 'जीवन रेखा' एक ऐसी स्त्री जमात की कहानी है, जो बच्चे-दर-बच्चे जने जा रही है. जोहरा जो नौ बच्चों की मां है, कल्पना करें, उसके जिस्म और सेहत का

क्या होगा? यह फिक्र परिवार के किसी सदस्य को नहीं है. ऐसे में स्त्री की ख़ामोश चीख़ मौत में तब्दील होती है. इसकी वजह है कि यह फिक्र पुरुष सत्ता की इन प्रवृत्तियों के विरोध या फिर असहमति में कहीं नहीं दिखती है. यूं यह कहानी स्त्री के मौन के विरोध में खड़ी है.

'रोटी और सपने' राबिया जैसी आर्थिक तंगी से गुज़र रही ज़िंदगी की जटिल कहानी है. राबिया का पति रिक्शा-चालक है और शराब की लत में उसकी असमय मौत भी हो जाती है. जीवन अस्तित्व से जुड़े इन संकट के क्षणों में उसकी शादी हिंदू-मर्द से होती है. यहां भी धर्म का कांटा व्यंग्य की तरह चुभता है. बावजूद कथाकार जीवन-संवेदनाओं और इंसानियत के तकाजे को ढूंढ़ते नज़र आते हैं कि वह हिंदू ही सही, पर वह दो वक़्त की रोटी, कपड़े, घर और बच्चों की पढ़ाई का ख़र्च तो वहन कर रहा है. यहां धर्म से बड़ी रोटी की अहमियत और लोगों की संवेदनाओं को संजोया गया है. स्त्री अस्तित्व के विपक्ष में और उससे उत्पन्न संकटों को व्यक्त करती कहानी 'मॉम...पापा आ गये' भी पाठकों को बेचैन करती है, तो दूसरी ओर यह कहानी इंसानियत के तकाजे को महफूज रखने की चाहत को भी सामने लाती है.

यूं ज़िंदगी भी एक इत्तफाक है. रेशमा शादी-शुदा मुस्लिम औरत और एक बच्चे की मां है. शौहर इरफान लंबे समय से दुबई में धन कमाने में मशगूल है. इधर मासूम बेटे समीर को पापा से मिलने की चाहत इतनी है कि मोबाइल के माध्यम से, एक फेक पापा बनते हुए किरदार अमन से बातचीत होती है. बच्चे में एक संवेदनात्मकता स्फुरण होती है. यह हक़ीकत उसकी मां रेशमा और अमन जानते हैं. इंसानियत का तकाजा यह है कि यह नाटकीय स्वरूप ज़िंदगी की हक़ीकत में तब्दील होता है. मसलन ज़िंदगी की नयी सुबह होती है, जहां अमन के रूप में समीर को पापा और रेशमा को पति मिलता है. ये किरदार ज़िंदगी की खुरदरी ज़मीन पर जीने की अपनी चाहत को ढूंढ़ लेते हैं.

कुछ कहानियां जैसे 'आशंकाओं के कुहासे' संग्रह की अन्य कहानियों के बिंब से हटकर हैं. अमन की सरकारी पोस्टिंग झारखंड राज्य में होती है, जहां आदिवासी-संस्कृति से लबरेज माहौल है. लिहाजा अमन को गैर-आदिवासी होने के संकटों से गुज़रना पड़ता है. यह कैसा लोकतंत्र है? भाषा, जाति, धर्म के नाम पर यह कैसी संकीर्णता है ? कथाकार इन तमाम जटिलताओं से गुज़रता हुआ कहानी के माध्यम से सवाल उठाता है कि 'आख़िर वह कौन सी तहजीब है जो व्यक्ति-व्यक्ति के बीच दरार डाल सकती है, उसे मिटा नहीं सकती?' कहानी 'ओवरकोट' होमोसेक्स की लंपट-संस्कृति को व्यक्त करती है. ये बदरंग किरदार अपने दोस्त-रिश्तेदारों के परिवार में अपने परिचय का दुरुपयोग करते हैं. लोग उन पर विश्वास करते हैं, लेकिन ये अपनी यौन-कुंठाओं से ग्रसित किसी मासूम बच्चे को अपनी हवस का शिकार बनाते हैं. निश्चय ही ऐसे चरित्र अपनी ग़लत बयानी और ख्यालात से विकृत दुनियां को जन्म दे रहे हैं. कहानी 'बच्चू खान' एक व्यक्ति का नाम नहीं, बल्कि एक ऐसा अराजक चरित्र का प्रतिनिधित्व है, जिसके दबाव और प्रभाव आम जनता से लेकर सिस्टम और संविधान के चौथे-स्तंभ पत्रकारिता पर भी बख़ूब जमे हुए हैं. कहानी इस बददस्तूर माहौल को रेखांकित करती है कि 'जहां देश के राजनेता और शासक ही करोड़ों-अरबों की रक़म उगाहने और उसे शुतुरमुर्ग के अंडों की तरह छिपाने में लगे हों, वे बच्चू खान से जुड़ी क्राइम की ख़बरें अपने समाचार-पत्रों में प्रकाशित नहीं करते, तो कौन-सा गुनाह करते हैं?' लिहाजा भ्रष्टाचार चरम पर होता है और इस बढ़ावे में अपराधी से लेकर राजनीति और आम-अवाम की अपनी-अपनी ख़ुदगर्जी भी शामिल होती है. जाहिर है, इन परिस्थितियों में सामाजिक चेतना कुंठित होती है.

अंतत: प्रस्तुत संग्रह की कहानियां आज के मनुष्य उसकी तृष्णाओं और सभ्य-समाज की जटिलताओं का अंतर्विश्लेषण हैं. दूसरी ओर, जीवन के जिस सत्य को मनुष्य अपनी लिप्साओं के कारण झुठलाने की कोशिश करता है, कथाकार ऐसे छद्म चरित्रों को बेनक़ाब करता नज़र आता है. यही वजह है कि मजहब और फिरकों की कट्टरता पर वह भरपूर प्रहार करता है. साथ ही धार्मिक अंधविश्वास के भीतर अंतर्विरोध और द्वंद्व की धुंध को अपनी नयी चेतना और विवेक-पुंज से वे ध्वस्त भी करते हैं. लिहाज़ा, इन कहानियों को एक नयी दृष्टि के साथ और स्वस्थ मानसिक बदलाव की अपेक्षाओं में अवश्य तरजीह देनी चाहिए. कथा-शिल्प और संप्रेषण संग्रह की ख़ासियत में शामिल हैं.

विवेकानंद कॉलोनी,
पूर्णियां-८५४३०१
मो. : ९८५२८८८५८९

मानव सुख-दुख के दोहे

✍ डॉ. रामकृष्ण शर्मा

शब्द हुए निःशब्द (दोहा संग्रह) **: सतीश गुप्ता**
प्रकाशक : शब्दोत्सव, के-२२१, यशोदानगर, कानपुर-२०८०११. **मू.** १००/-

कविता का प्राण और कवि का प्राण सयुज सखा होते हैं. कविता का प्राण दृष्टा होता है और कवि का प्राण भोक्ता होता है. रस की महायात्रा के पथ का निर्माण कल्पना, धारणा, विचारणा और शैली करती है. इस यात्रा में शब्द जो कुछ कहते हैं वह सुनायी नहीं देता, दिखायी देता है. इसलिए कविता के शब्द निःशब्द हो जाते हैं. जहां पर शब्द की यात्रा निःशब्द हो जाती है, मात्र ध्वन्यात्मक व्यंजना शेष रह जाती है, ध्वनि विसर्जित हो जाती है. निःशब्द ध्वनि की गूंज बड़ी खनकभरी होती है. दोहाकार श्री सतीश गुप्ता ने निःशब्द को परिभाषित करते हुए भूमिका भाग में बहुत कुछ लिखा है — 'मुट्ठी में आक्रोश है, चिंतन मदहोश है, मौन आवाज़ें हैं, ठनी तकरार है. चटके संवाद हैं, चुप्पी है, दरार है, स्वयं की तलाश है, सांस आसपास है. गम के रहने को तनहाई का भाव है, ज़ख़्मों की जाज़म है, दर्दों की छांव है. पूजा की कोठरी है, वाणी की पुकार है, भक्तिमयी प्रार्थना है, ईश्वर का द्वार है. दुःखों की रेत पर, सुखों का नीर है, सुख के कुबेर हैं, दुख के कबीर हैं.

वेद में छंद को पाद कहा गया है. जिस तरह द्विपद पुरुष होता है उसी तरह दोहा भी द्विपद होता है. पुरुष अपनी पौरुषमयी वाणी से खरी वाणी कहता है. इसलिए कवि पुरुष होता है और दोहा लिखने वाला शलाका पुरुष. श्री गुप्ता जी शलाका पुरुष हैं. इन्होंने दोहावली की ही रचना नहीं की है, अपितु इससे पूर्व संपादन कला से दक्ष श्री गुप्ता ने पांच वर्षों से निरंतर 'अनन्तिम' (काव्य केंद्रित त्रैमासिक पत्रिका) का संपादन करते हुए दोहा संयुक्तांक प्रकाशित करके अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है. दोहा में दो का अर्थ स्पष्ट है — दो पद. हा का अर्थ है नष्ट होना. अर्थात विलीन हो जाना. दूसरा पद पहले में विलीन हो जाये तब दोहा बनता है. 'शब्द हुए निःशब्द' का दोहाकार अपना विचार प्रस्तुत करते हुए, पहले पद में अपने विचारों को शब्दों में प्रस्तुत करता है — 'जब से आंखों में बसे, सपने आंसू आस.' दूसरे पद में वह अप्रस्तुत कल्पना को इस शैली के साथ सहेज रहा है कि शब्द निःशब्द हो रहे हैं तथा दोहा पूर्ण हो रहा है - 'शब्दों में भी आ बसे, अर्थ नाद और श्वास.' 'शब्द हुए निःशब्द' ग्रंथ के प्रथम पृष्ठ पर समर्पण स्वरूप एक दोहा लिखकर सहृदय सामान्य को दोहाकार ने अचंभित कर दिया है — 'जीवन के अंतिम मनन, लिखो वसीयत एक. इस जीवन के बाद भी, रहे मुहब्बत नेक.' वस्तुतः 'शब्द हुए निःशब्ध' की रसोत्कर्षी चेतना, संवेदना के मौलिक अभिव्यंजन का प्रस्तुतीकरण है. इसमें वेदना, आंसू, व्यथा और अवसाद के साथ मानवतावादी चिंतन सर्वोपरि दीप्तिमान हो उठा है. श्री गुप्त के कवि कर्म-कौशल्य की प्रवीणता पर उन्हें मेरी बधाई. उनकी लेखनी निरंतर चमत्कार प्राण रसोत्कर्ष के पथ पर अग्रसर रहे यही सारस्वत शुभकामना.

'स्नेहांचल', २५६, तेजाब मिल कैंपस,
अनवर गंज स्टेशन के पास, कानपुर
मो. ९३३६५०५५८०

रंग-बिरंगे फूलों-सी महकती लघुकथाएं

✍ घमंडीलाल अग्रवाल

'हरी सुनहरी पत्तियां' (ल. क. संग्रह) **: कमल कपूर**
प्रकाशक : अक्षरधाम प्रकाशन, करनाल रोड, कैथल
मू. २०० रु.

हिंदी साहित्य को नौ कहानी संग्रह, एक लघुकथा संग्रह, एक उपन्यास, चार काव्य संग्रह और एक बालगीत संग्रह देकर समृद्ध करनेवाली हरियाणा की यशस्वी रचनाकार कमल कपूर किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं. हरियाणा साहित्य अकादमी के 'सर्वश्रेष्ठ महिला रचनाकार सम्मान' सहित विभिन्न प्रदेशों के लगभग साठ सम्मानों से नवाजी जा चुकी इस लेखिका का दूसरा लघुकथा संग्रह हाल ही में प्रकाश में आया है, जिसका शीर्षक है — 'हरी-सुनहरी पत्तियां'.

इस समीक्ष्य लघुकथा संग्रह में छोटी-बड़ी अठत्तर लघुकथाएं हैं. रंग-बिरंगे फूलों सी महकती इन लघुकथाओं को कथ्य की दृष्टि से छह भागों में बांटा जा सकता है :-

भावना प्रधान, यथार्थवादी, परंपरा विरोधी, प्रेम संबंधी, आदर्शमूलक एवं आक्रोश से भरी. भावना प्रधान लघुकथाओं के अंतर्गत इन लघुकथाओं को रखना उचित है :- क्यों, चश्मा, प्यासे प्याऊ, अभाव, अपना चौबारा, त्रिकोण, किसके कंधे, पगफेरा, शर्मिंदगी, बूढ़े पाखी, औक़ात, केयर टेकर होम, प्रवासी दर्द, पुत्री पवित्र किये कुल दोऊ, पिंजरे की चिरैया तथा अहम से वयम. 'अपना चौबारा' नामक लघुकथा की अंतिम पंक्तियां मानस-पटल पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं — 'ना रे केसर! उस देस से तो अपना चौबारा भला. कल सबको न्यौतूंगी अपने चौबारे पर और ख़ूब जंग छुड़ाऊंगी जुबान की! सबको संदेसा दे दीजो कि कल्याणी लौट आयी.'

यथार्थवादी लघुकथाओं के उदाहरण हैं :- लेखक की पत्नी, कवयित्री, मृत संवेदनाएं, लक्ष्मी से चंडी, यदि, मर्द/नामर्द, कच्चे धागे, क्षमा कीजिएगा, गेहूं और गुलदस्ते, सहारे, बंधनमुक्त, मोहरे, असभ्य/सभ्य, श्राप या वरदान, मृग मरीचिका और अन्न पर्व. 'यदि' लघुकथा की निम्न पंक्तियां पाठकों को यथार्थ के समतल पर ला खड़ा करती हैं — 'बुरा न मानो तो मौसी एक बात पूछूं ? यदि इसकी जगह बेटा हुआ होता तो क्या आप उसे भी मनहूस कहतीं और उसका नाम बिलाव रखतीं?'

परंपरा विरोधी लघुकथाएं हैं :- आधुनिका, नया क़दम, यूं भी, शायद, आज के श्रवण, एक और एक, पानी की जात, दरअसल, युग की मांग, राहत की छांव, ऋण नहीं, गोद भराई, रोशनी हो जहां, समाधान, पुश्तैनी पालना, उसकी ख़ुशी, सांसों का अधिकार, वह फूलवाली, पाठ एवं अहम ब्रह्म अस्मि. 'आज के श्रवण' लघुकथा की अंतिम पंक्तियां पुरानी परंपराओं को तार-तार करने में सक्षम हैं — 'बाबूजी! हम आपकी तरह सात संतानों को नहीं, सिर्फ़ एक-एक संतान को जन्म देंगे ताकि उन्हें वे अभाव न देखने-सहने पड़ें, जो हमने देखे-सहे.'

मां सबकी मां, अनुत्तरित तथा भंवरा नामक लघुकथाएं प्रेम संबंधी लघुकथाओं के अंतर्गत आती हैं जिनमें हृदय की अनंत छलकन प्रेम के सहज दर्शन होते हैं. आदर्शमूलक लघुकथाओं के शीर्षक हैं :- लक्ष्मी-पूजा, कृष्ण-सुभद्रा है राखी, जात, इसीलिए, हंसी-ख़ुशी, संपर्कों का तीर, कथनी करनी, तेवर, विकल्प, गरिमामयी, रंगा सियार, नज़रिए/नज़र व स्वर्ग की देवी. 'लक्ष्मी-पूजा' लघुकथा की ये पंक्तियां कितनी मार्मिक हैं — 'ओ मेरी बिटिया! दीवे तेल-बाती से जला करें, पानी से नहीं. यहां पेट भरन को नाज तक तो है न फिर...!'

आक्रोश से भरी लघुकथाओं में ये लघुकथाएं आती हैं :- अंतर, किसका हक़, कंगालों की औलाद, अग्नि-परीक्षा, क्रांति तथा वजह. 'अग्नि-परीक्षा' नामक लघुकथा की ये पंक्तियां अपने हृदय के आक्रोश को प्रकट करने में बेहद समर्थ जान पड़ती हैं — 'क्यों चली जाऊं? यह हमारी सम्मिलित कमाई से बना है और न भी बना होता तो क़ानूनन आधे घर पर मेरा हक़ है. तुम्हें मुझसे तकलीफ है तो तुम जाओ!'

इन लघुकथाओं का शिल्प-सौंदर्य उत्तम है. भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहमयी है. शैली की बात करें तो आत्मकथात्मक सहित कई प्रकार की शैलियों का सहारा लिया गया है. पुस्तक का मुद्रण तथा आवरण भी उत्कृष्ट है. हां, जहां-तहां प्रूफ़ की ग़लतियां अवश्य नजर आती हैं. 'फ़र्क', 'त्याग या प्यार' तथा 'रक्षाकवच' नामक लघुकथाओं का उल्लेख डॉ. रूप देवगुण ने भूमिका-लेखन में किया है जबकि संग्रह में ये मौजूद नहीं हैं. कुल मिलाकर पुस्तक पठनीय है. लघुकथा जगत में 'हरी-सुनहरी पंक्तियां' का स्वागत होगा, ऐसी उम्मीद हैं.

७८५/८, अशोक विहार,
गुड़गांव-१२०००६
मो. : ९२१०४५६६६६

भ्रष्टाचार में डूबे व्यवस्था के गलियारे

अम्रीक सिंह 'दीप'

गलियारे (उपन्यास) **: डॉ. रूप सिंह चंदेल**
प्रकाशक - भावना प्रकाशन, १०९ ए, पटपटगंज, दिल्ली-११००९१. **मू.** ५०० रु.

भ्रष्टाचार से पूरे देश का रोम-रोम पीड़ित है. लोग बिलबिलाये हुए हैं, तिलमिलाये हुए हैं, चाहते हैं कि इस महाराक्षस का संहार हो. विगत दो-ढाई वर्षों में भ्रष्टाचार के विरुद्ध हुए दो बड़े जन-आंदोलन गवाह हैं इस बात के. जिस तरह से पूरा देश इन आंदोलनों से जुड़ गया था, वह भ्रष्टाचार के विरुद्ध आम आदमी के दमित आक्रोश का ही प्रमाण था. इन आंदोलनों की इस धूर्तता और चालाकी से हवा निकाली है कि लोग अब तक अवाक और हतप्रभ हैं.

जब इतने बड़े आंदोलनों से भ्रष्टारियों का बाल तक बांका न हो सका तो एक अकेला ईमानदार आदमी क्या खाकर इस महाराक्षस का मुक़ाबला कर पायेगा. लेकिन कुदरत बड़ी कारसाज है. उसने इस धरती पर अगर रावण और कंस को जन्म दिया था तो राम और कृष्ण को भी अवतरित किया था. अन्याय का प्रतिरोध करनेवाले हर युग में रहे हैं और रहेंगे. भ्रष्टाचार के महादैत्य से मुठभेड़ करने के लिए संकल्पबद्ध ऐसे ही एक ईमानदार और जुझारू युवक की संघर्ष गाथा है रूप सिंह चंदेल का नया उपन्यास 'गलियारे'.

इस युवक का नाम है सुधांशु दास. सुधांशु गांव में रहकर इंटरमीडिएट तक की पढ़ाई पूरी करता है. आगे की पढ़ाई के लिए वह दिल्ली जाना चाहता है. अपने मेधावी पुत्र की इच्छा पूरी करने के लिए उसका किसान पिता एक खेत रेहन रख रक़म उसे देकर हाथ जोड़ देता है कि इससे अधिक करने का सामर्थ्य उसमें नहीं है. कहावत है कि 'जहां चाह है, वहां राह है.' दिल्ली जाते हुए ट्रेन में उसे रविकुमार राय नाम का सहयात्री मिलता है, जो उसके दिल्ली में रहकर उच्च अध्ययन करने के सपने का सहयोगी बन जाता है.

दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हुए ही धीरे-धीरे उसका साबका भ्रष्टाचार से पड़ना शुरू हो जाता है — 'एम. ए. में उसे प्रथम श्रेणी मिली. प्रीति ने होस्टल फ़ोन कर परिणाम जाना और यह जानकर कि उसे चौसठ प्रतिशत अंक मिले, वह चीख़ी थी — ''वेलडन सुधांशु, तुमने बाजी मार ली.'' ''ख़ाक मारी बाजी...'' सुधांशु बहुत प्रसन्न नहीं था. उसे आशा थी कि उसे गोल्ड मेडल मिलेगा, लेकिन गोल्ड मेडल मिला था विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के एक प्रोफ़ेसर के पुत्र को.

सुधांशु की प्रतिभा के प्रति विश्वविद्यालय में उससे एक वर्ष जूनियर प्रीति मजूमदार नाम की एक लड़की, जिसके पिता एडीशनल सेक्रेट्री हैं, आकर्षित हो उठती है. सुधांशु बार-बार उसे ख़ुद के एक ग़रीब किसान का बेटा होने का वास्ता देता है पर प्रेम जब जुनून में बदल जाता है तो वह किसी अवरोध, किसी हद को नहीं मानता. सुधांशु भी प्रीति के इस जुनून के बहाव में बह जाता है.

सुधांशु के कैरियर में गहरी रुचि लेने लग गये प्रोफ़ेसर शांति कुमार उसे एम. ए. के बाद की पी-एच. डी. करने की सलाह देते हैं. लेकिन सुधांशु का ट्रेन का सहयात्री मित्र उसे सचेत करता है — 'यहां कम से कम पचास प्रतिशत टीचिंग स्टॉफ की पत्नियां, बच्चे साले-सालियां या भाई-भतीजे प्राध्यापक मिलेंगे. शेष स्टॉफ का भी यही हाल है. जैसे राजनीति में वंशवाद की जड़ मज़बूत है, उसी प्रकार विश्वविद्यालय की स्थिति है. और यह स्थिति केवल दिल्ली विश्वविद्यालय की है, ऐसा नहीं है. सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों की है.'

विश्वविद्यालय में व्याप्त भ्रष्टाचार को देखते हुए सुधांशु अपने प्रिय प्रोफ़ेसर की सलाह पर एम. फिल. तो कर लेता है लेकिन इसी के साथ आई. ए. एस. की तैयारी में भी जी–जान से जुट जाता है. अंततः उसकी साधना सफल होती है और वह चयनित हो जाता है. उसका चयन बतौर सहायक निदेशक अलाइड सेवा में प्रतिरक्षा वित्त विभाग (प्ररवि) के लिए होता है. भिन्न-भिन्न शहरों में अवस्थित प्ररवि विभाग के कार्यालयों में एक वर्ष तक प्रशिक्षण लेने के बाद उसकी पहली पोस्टिंग पटना में होती है. पोस्टिंग के बाद उसका विवाह भी प्रीति मजूमदार से हो जाता है.

सुधांशु को कैरियर के साथ-साथ उसे कविता और लेख लिखने का भी शौक़ है. पटना पोस्टिंग के दौरान वह वहां कुछ लेखकों के संपर्क में आता है और साहित्यिक गोष्ठियों में शिरकत भी करने लगता है. वहां जाकर उसे पता चलता है कि साहित्य में भी कम भ्रष्टाचार नहीं है. साहित्य पर सरकारी अफ़सरों और संपन्न बुद्धिजीवियों का दबदबा है — 'दुनिया जानती है कि इन्कमटैक्स और सेल्सटैक्स के कुछ अफ़सर रिश्वतखोर होते हैं और यदि वे साहित्य में हुए तो जब तक पद पर रहते हैं तब तक साहित्य पर छाये रहने की कोशिश करते हैं.'

पटना प्रवास के दौरान ही प्रीति दास भी आई. ए. एस. की तैयारी प्रारंभ कर देती है. और जब सुधांशु का स्थानांतरण पटना से दिल्ली होता है तो वह भी आई. ए. एस. की परीक्षा पास कर चुकी होती है. लेकिन इन दोनों पति-पत्नी के मध्य वैचारिक टकराव पटना से ही शुरू हो जाता है. प्रीति के अभिजात्यपन को सुधांशु के माता-पिता की आदतें गंवारू लगती हैं. उधर सुधांशु के माता-पिता का बेटे-बहू के घर के कृत्रिम कुलीन परिवेश में दम घुटने लगता है और वे गांव लौट जाते हैं. आई. ए. एस. बन जाने के बाद प्रीति दास की पोस्टिंग पहले देहरादून फिर सुधांशु के

साथ दिल्ली हो जाती है.

सुधांशु का सुनामी रूपी भ्रष्टाचार की लहरों से सीधा साबका दिल्ली के प्रवधि विभाग में स्थानांतरण हो जाने के बाद पड़ता है. उसे यहां ठेकेदारों के बिल पास कर चेक बनाकर भेजने का कार्य सौंपा जाता है. अपना काम वह पूरी ईमानदारी से करने लगता है लेकिन उसकी ईमानदारी न ठेकेदारों को रास आती है न विभाग को. क्योंकि कॉन्ट्रैक्टर्स कम माल सप्लाई कर ज़्यादा का बिल सबमिट करते हैं और विभाग को इसके लिए अच्छा कमीशन मिलता है. उसकी इस ईमानदारी पर उसका प्रधान निदेशक चमन लाल पाल कुपित हो उठता है और उसे समझाने की कोशिश करता है — 'सुधांशु, व्यवस्था ऐसे नहीं चलती, अड़ियल नहीं होना चाहिए. जो मिलता है लेते रहो और बिल क्लियर करते रहो. वे कुछ हेराफेरी करते हैं, लेकिन उस ओर से आंखें मूंदने में ही भलाई है हम ब्यूरोक्रेट्स की. क्योंकि सभी कॉन्ट्रैक्टर्स की मंत्री तक सीधी पहुंच है.'

प्रधान निदेशक के इस संवाद से स्पष्ट हो जाता है कि भ्रष्टाचार का उत्स कहां है! क्यों लोग राजनीति में आने के लिए करोड़ों रुपयों का निवेश कर रहे हैं? क्यों राजनीति एक धंधा हो गयी है? क्यों सत्ता एक प्रोडेक्ट हो गयी है? क्यों इस प्रोडेक्ट के विज्ञापन के लिए ख़रबों रुपया पानी की तरह बहाया जाता है?

बहरहाल, आदर्शवादी सुधांशु के ईमानदारी वाले अड़ियल रवैये से भ्रष्टाचार का दैत्य बिफर उठता है और प्रारंभ हो जाता है उत्पीड़न और प्रताड़ना का सिलसिला. सुधांशु का उस कार्यालय के रिकॉर्ड रूम के एक कोने में रिकॉर्ड के रैक हटाकर जगह दी गयी थी. उसकी सीट के पीछे एक खिड़की थी, जिसमें कूलर लगा हुआ था. ऊपर पंखा था, चारों ओर रैक्स थे. वास्तव में उस सीट पर रिकॉर्ड क्लर्क बैठता, जिसे हटाकर गैलरी में बैठा दिया गया था.

सुधांशु की इस गर्हित स्थिति के लिए जब उसकी पत्नी प्रीति उससे प्रश्न करती है — 'आपको अचानक रिकॉर्ड रूम में क्यों बैठाया गया और जो काम आप देख रहे थे, वह भी ले लिया गया ?'

'मेरी बला से, मैं भ्रष्टाचार में उनका साथ नहीं दे सकता.' सुधांशु उत्तर देता है.

'भ्रष्टाचार?'

'प्रधान निदेशक से लेकर चपरासी तक — एम. एफ. पी. ओ. सेक्शन की बात कर रहा हूं — रिश्वतखोरी में आकंठ डूबे हुए हैं और यही क्यों, जिसका दांव जहां लग रहा है, खा रहा है. विकास के नाम पूरे देश में भयानक भ्रष्टाचार बढ़ रहा है.'

नायक का रोषभरा यह कथन दिल में दहशत पैदा करता है. उपन्यास में अंततः एक ईमानदार आई. ए. एस. अफ़सर का जो हश्र होना चाहिए वही होता है. व्यवस्था उसकी अस्मिता को कुचलने का कोई कसर नहीं छोड़ती. उसकी मां को कैंसर हो जाता है, व्यवस्था उसका अवकाश नहीं स्वीकृत करती कि वह मां को दिल्ली लाकर एम्स अस्पताल में भर्ती करा सके. गांव में उसकी मां की मृत्यु हो जाने पर उसके अवकाश में अड़ंगे लगाये जाते हैं. इन्तहा तो यह है कि एक चरित्रहीन उप-महानिदेशक डी. पी. मीणा उसकी पत्नी प्रीति का शील हरण तक कर डालता है.

शारीरिक आघात तो इन्सान किसी न किसी तरह सहन कर लेता है पर मानसिक आघात या तो आदमी को पागल बना देते हैं या फिर नशे के अंधे कुंए में धकेल देते हैं. सुधांशु भी टूट कर बिखर जाता है.

यह उपन्यास भ्रष्टाचार के कई रूपों को सामने लाता है. यह भी दर्शाता है कि लाख निर्भया बलात्कार कांड देश में भूचाल ला दें पर जब देश की शीर्ष व्यवस्था ही महिला कर्मचारियों के प्रति संवेदनहीन है और उनके दैहिक शोषण में आंशिक रूप से संलग्न है तो देश के किस कोने में स्त्री सुरक्षित है? इस उपन्यास में लंपट औरतबाज डी. पी. मीणा सुधांशु की सहायक महानिदेशक के पद पर कार्य कर रही पत्नी प्रीति दास को तो अपनी रखैल बना ही लेता है, साथ ही यू. डी. सी. से सेक्शन अफ़सर बनने की आकांक्षी श्रीमती जूही अरोड़ा को भी दो रातों के लिए अपना हमबिस्तर होने पर विवश कर देता है. इसके अतिरिक्त अन्य भी कई....

'गलियारे' उपन्यास को पढ़ने के पश्चात देर तक सिर झुकाये गहरे सन्नाटे में घिरा बैठा रहा. यूं लगा था जैसे उपन्यास के नायक की नहीं मेरे किसी आत्मीय स्वजन की मृत्यु हो गयी हो. रह-रह कर उपन्यास के नायक सुधांशु की जगह लखीमपुर खीरी में पेट्रोल माफिया द्वारा मार दिये गये ईमानदार अफसर मंजु नाथ का चेहरा फेड-इन-फेड आउट होता रहा.

फ़्लैट नं.१०१, गोल्डी अपार्टमेंट,
११९/३७३–बी दर्शन पुरवा,
कानपुर-२०८०१२

अकादमी के प्रकाशन

देश-भर के ख्यातिप्राप्त सृजनधर्मी शब्द-शिल्पियों के साथ-साथ
उदीयमान प्रतिभाओं की सशक्त लेखनी का संयुक्त मंच

इन्द्रप्रस्थ भारती

साहित्य-संस्कृति की समग्र त्रैमासिकी

हिन्दी भाषा और साहित्य के उन्नयन-हेतु सतत प्रयत्नशील

हिन्दी अकादमी, दिल्ली
द्वारा प्रकाशित एक ऐसी सम्पूर्ण त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका जो सहज मानवीय संवेदनाओं, उदात्त जीवन-मूल्यों तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का अनूठा संगम और हर वर्ग के पाठक-समुदाय की अपेक्षाओं के अनुकूल पठनीय एवं संग्रहणीय है।

लगभग एक सौ छिहत्तर पृष्ठ
मूल्य : एक प्रति 25/- रुपये
वार्षिक 100/- रुपये ● त्रैवार्षिक 300/- रुपये

सुरुचि सम्पन्न स्वस्थ सकारात्मक अभिव्यक्ति की सूत्रधार 'इन्द्रप्रस्थ भारती' के स्थायी सहभागी बनें। आज ही अपना वार्षिक शुल्क सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली के नाम मनीऑर्डर/चैक (स्थानीय) द्वारा भेजकर सदस्यता प्राप्त करें।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें -
डॉ.हरिसुमन बिष्ट
सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली
समुदाय भवन, पदम नगर, किशन गंज, दिल्ली-110007
दूरभाष : 23690274, 23693118, 23694562, फैक्स : 23696897
E-mail : hindiacademy_delhi@rediffmail.com
hindiacademydelhi@gmail.com

'कथाबिंब' के कहानी विशेषांक का लोकार्पण

(२४ मई २०१४)

प्रस्तुति - अशोक वशिष्ठ

कथा प्रधान त्रैमासिक पत्रिका 'कथाबिंब' के कहानी विशेषांक का लोकार्पण कार्यक्रम शनिवार, २४ मई, २०१४ को चेंबूर, मुंबई के विवेकानंद कला, विज्ञान, वाणिज्य महाविद्यालय के सभागार में संपन्न हुआ. लोकार्पण कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. राम जी तिवारी थे.

मां सरस्वती के सम्मुख दीप प्रज्ज्वलन के बाद 'कथाबिंब' के प्रधान संपादक डॉ.माधव सक्सेना 'अरविंद', संपादिका मंजुश्री तथा 'संस्कृति संरक्षण संस्था', मुंबई की न्यासी डॉ.(कु.) मिथलेश सक्सेना ने मुख्य अतिथि तथा अन्य अतिथियों का स्वागत किया. ज्ञात हो कि 'कथाबिंब' पत्रिका का प्रकाशन 'संस्कृति संरक्षण संस्था', मुंबई के सौजन्य से किया जाता है.

कार्यक्रम के आरंभ में डॉ. माधव सक्सेना ने 'कथाबिंब' के पैंतीस वर्षों के सफ़र का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया. उन्होंने कहानी विशेषांक के अतिथि संपादक वरिष्ठ कथाकार डॉ. रूपसिंह चंदेल के परिश्रम और सहयोग की सराहना की. मुख्य अतिथि प्रो. राम जी तिवारी ने अपने संबोधन में 'कथाबिंब' के ३५ वर्षों से अनवरत होते आ रहे प्रकाशन के लिए प्रधान संपादक डॉ. माधव सक्सेना, संपादिका मंजुश्री एवं अन्य सहयोगियों के प्रयासों की प्रशंसा करते हुए साहित्य और समाज के सामने आ खड़ी हुई चुनौतियों का उल्लेख किया. उन्होंने विशेष रूप से 'कथाबिंब' की इस बात के लिए प्रशंसा की कि पत्रिका ने कभी भी अपने मूल्यों के साथ समझौता नहीं किया.

लब्धप्रतिष्ठ कथाकार डॉ.सूर्यबाला ने अपने वक्तव्य में कहा कि व्यावसायिकता और सामाजिक मूल्यहीनता के इस दौर में 'कथाबिंब' बिना किसी विवाद में पड़े, अपने संकल्पों के साथ बिना कोई समझौता किये पाठक वर्ग को सर्वोत्तम देने के प्रयास में सफ़ल रही है.

वरिष्ठ कथाकार सूरज प्रकाश ने अपने वक्तव्य में 'आज का समय और कहानी' विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किये. उन्होंने सचेत किया कि समाज में तीव्रता से आ रहे बदलाव, पाठकों का अभाव और इंटरनेट तथा फ़ेसबुक के बढ़ते दौर में लेखन कार्य बड़ा चुनौती पूर्ण हो गया है. उन्होंने अपनी एक कहानी के कुछ अंश भी प्रस्तुत किये.

इस अवसर पर कहानीकार डॉ. रमाकांत शर्मा ने अपनी कहानी 'दो लिफ़ाफ़े' और कहानीकार अशोक वशिष्ठ ने अपनी कहानी 'मुंसा ताऊ' का वाचन किया.

कार्यक्रम प्रसिद्ध लेखिका और फ़िल्म कलाकार सविता बजाज के सान्निध्य में संपन्न हुआ. इस अवसर पर हस्तीमल 'हस्ती', अरविंद शर्मा 'राही', श्रीमती राजेश्वरी दुष्यंत (श्रीमती दुष्यंत कुमार), आलोक त्यागी, अनंत श्रीमाली, श्रीमती गायत्री कमलेश्वर आदि बड़ी संख्या में साहित्यकार और साहित्य प्रेमी उपस्थित थे.

कार्यक्रम का संचालन जय प्रकाश त्रिपाठी ने किया.

BPCL PROFILE

Bharat Petroleum Corporation Limited (BPCL) came into existence in January, 1976 when the erstwhile Burmah-Shell was taken over by the Government of India. A Fortune Global 500 company enjoying Navratna status, BPCL is one of the premier integrated refining and marketing companies in India. BPCL's vision is to be the most admired global energy company leveraging talent and technology.

- The BPCL Group of Refineries has a combined refining capacity of over 30 MMTPA. The company's Refineries at Mumbai and Kochi have a capacity to process 12 MMTPA and 9.5 MMTPA respectively, Subsidiary Numaligarh Refinery Ltd. at Assam has a refining capacity of 3 MMTPA and the Joint Venture Bina Refinery at MP has a capacity of 6 MMTPA.

- BPCL has made an important foray into the upstream sector and its wholly owned subsidiary company, Bharat PetroResources Ltd (BPRL) has acquired participating interests in 19 oil & gas blocks in India and abroad. It has announced world class discoveries in Brazil, Mozambique and Indonesia.

- BPCL markets its products through a robust marketing and distribution network comprising around **12,531** Retail Outlets, about **3,367** LPG distributorships, **128** storage depots/ installations, **50** LPG Bottling Plants, **34** Aviation Service Stations, Lube blending plants, cross-country pipelines etc. In 2013-14, BPCL's market sales were **34.00** MMT and its market share amongst public sector oil companies was **23.48%.** The products have a wide range of applications in various industrial and transport sectors.

- BPCL has formed fifteen joint venture companies covering refining, city gas distribution, renewable energy, pipelines, gas, into-plane servicing etc. to cater to the diverse requirements of its customers.

During the year 2013-14, BPCL's gross revenue from operations stood at Rs.**2,71,037.35** crores and the net profit was Rs.**4,060.88** crores. With 'Energising Lives' as its core purpose, BPCL touches the lives of a billion Indians in some way or the other.

कहानी विशेषांक लोकार्पण

२४ मई २०१४

मंजुश्री (संपादिका कथाबिंब) और प्रो. रामजी तिवारी

दीप प्रज्वलित करती सविता बजाज. साथ में सूरजप्रकाश, अशोक वशिष्ठ, डॉ. सूर्यबाला और प्रो. रामजी तिवारी

अशोक वशिष्ठ, डॉ. रमाकांत शर्मा, डॉ. अरविंद, सूरज प्रकाश, प्रो. रामजी तिवारी, डॉ. सूर्यबाला और सविता बजाज

मंजुश्री द्वारा संपादित व युनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, रेतीवाला इंडस्ट्रीयल इस्टेट, भायखला, मुंबई – ४०० ०२७. में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, १२ वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई – ४०० ०७१. फोन : २५५१५५४१